कुरुक्षेत्र

नवम्बर 1991 तीन रूपये

बाल-विवाह
ग्रामीण लघु एवं कुटीर उद्योग
समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

बच्चे दुनिया में कहीं भी हों, स्वभाव से एक जैसे होते हैं। देखने में वे अलग-अलग लगते हैं, अलग-अलग भाषाएं बोलते हैं, अलग-अलग ढंग के कपड़े पहनते हैं लेकिन उनके स्वभाव में कोई अंतर नहीं होता। अगर उनको एक जगह एकत्र कर दें तो वे या तो खेलने लगेंगे या आपस में झगड़ने लगेंगे। उनका आपस में झगड़ा भी खेल ही होता है। वे आपस में एक दूसरे के बीच भिन्नता पर कभी ध्यान नहीं देते। वर्ग, जाति, रंग या दर्जे की बात तो वे कभी सोचते भी नहीं हैं। इन बातों से कोई उनका वास्ता नहीं होता।

— जवाहर लाल नेहरू

शंकर्स वीकली, नयी दिल्ली, 26 दिसम्बर, 1950

वर्ष-37, अंक 1 कार्तिक-अग्रहायण शक 1913

सम्पादक : राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक : [illegible]
उप सम्पादक : [illegible] जोशी
विज्ञापन प्रबंधक : [illegible] राजभर
व्यापार व्यवस्थापक : बलवंत सिंह
सहायक [illegible]
[illegible]
[illegible]

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

भारतीय समाज और बालिकाओं की स्थिति — 3
प्रदीप पंत

ग्रामीण विकास कार्यक्रम — कितने सार्थक — 6
देवेन्द्र उपाध्याय

सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका महत्वपूर्ण है — 9
शंकर भट्ट

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु प्रभावी उपाय — 12
डा. सी. एम. चौधरी

गांवों का विकास — ग्रामीण उद्योगों पर निर्भर है — 15
रफीक शास्त्री

ग्रामीण विकास में बाधाएं — 17
डा. पुष्पेश पांडे

ग्रामीण विकास कार्यक्रम-एक मूल्यांकन — 22
डा. एस.सी. जैन

साक्षर दीवाली — 25
विनय जोशी

कुटीर उद्योग क्षेत्र की चुनौतियाँ — 26
हरि बिश्नोई

कृषकों का मुक्तिदाता सशक्त-लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण — 32
डा. हरिवल्लभ त्रिवेदी

लघु एवं कुटीर उद्योगों का ग्रामीण विकास में महत्व — 37
रजनी

गांवों के विकास में ही भारत का विकास है : गांधीजी — 41
देवकी

मध्य प्रदेश का हथकरघा उद्योग : स्थिति और समाधान — 44
डा. एम.एल. सोनी

ग्राम विकास में कुटीर उद्योग — 47
ब्रजलाल उनियाल

युग दृष्टा : जवाहरलाल नेहरु — 52
चन्द्रदत्त 'इन्दु'

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।
दूरभाष : 384888

कल की दुनिया

बापू की दृष्टि में

"कल की दुनिया अहिंसा पर आधारित होगी, होनी भी चाहिए। यह बुनियादी नियम है। बाकी सब कुछ अपने आप होता चला जायेगा।

व्यक्ति, समूह और राष्ट्र सब को अहिंसा और प्रेम का मार्ग ही अपनाना पड़ेगा।

यदि ऐसा हुआ तो आने वाले कल की दुनिया में न गरीबी होगी, न युद्ध होंगे, न उलट-फेर होंगे, न ही रक्तपात होगा।"

प्रगति के पथ पर – शांति के साथ

davp 91/388

नेहरू जयंती पर विशेष

भारतीय समाज और बालिकाओं की स्थिति

प्रदीप पंत

बच्चे हमारा कल का भारत है जो आज के बच्चे हैं, उन्हीं के लिए कल का भारत होने वाला है वही भारत होने वाले हैं । आज के बच्चे कल के भारत के वारिस हैं । कैसा भारत हम उनके लिए तैयार करें ?" ये शब्द हैं देश के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के जो बच्चों के "चाचा नेहरू" कहलाते थे और जिनके जन्म दिन को "बाल दिवस" के रूप में मनाया जाता है । पंडित नेहरू ने एक बार उत्तर प्रदेश के मोदी नगर में आयोजित एक सार्वजनिक सभा में भाषण के दौरान पूछा था - "देश का धन आखिर क्या है ?" और फिर स्वयं उन्होंने उत्तर दिया था - "देश का धन वह नहीं जो महाजन के पास हो या बैंक में रखा हो । सोना-चांदी धन नहीं । धन देश का है देश की जनता और देश का असली धन है देश के बच्चे, लड़के-लड़कियां ।"

सवाल उठता है कि देश के इस 'असली धन' का, इस विराट भावी मानव-संसाधन स्रोत का हम सदुपयोग कर रहे हैं या दुरूपयोग ? हम अपने बच्चों के प्रति संवेदनशील हैं या क्रूर ? हम उन्हें विकास के उचित अवसर प्रदान कर रहे हैं या फिर उनका विकास ठहरा हुआ है ?

ऐसा तो नहीं कहा जा सकता है कि आजादी के बाद से बाल-विकास के क्षेत्र में कुछ हुआ ही नहीं, पर इस सच्चाई से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि अनेक कार्यक्रमों, योजनाओं-परियोजनाओं के बावजूद ऐसे बच्चों की संख्या बहुत अधिक है जो अस्वस्थ हैं, विकसित होने से पहले ही मौत के शिकार हो जाते हैं, पर्याप्त शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते, कच्ची उम्र में ही होटलों, ढाबों, फैक्ट्रियों, घरों आदि में काम करने के लिए विवश होते हैं । कहना न होगा कि ऐसे बच्चों में भी अधिक संख्या लड़कियों या बालिकाओं की है । इसीलिए हाल के वर्षों में बालिकाओं की स्थिति पर सभी क्षेत्रों में गहरी चिंता व्यक्त की गई है । सार्क देशों ने तो पिछले सम्पूर्ण वर्ष को ही 'बालिका वर्ष' के रूप में मनाया और अब इस दशक को बालिका दशक के रूप में मनाया जा रहा है । 'बालिका वर्ष' की और कोई उपलब्धि हो या नहीं पर इतना तो है कि इस एक वर्ष ने बालिका की स्थिति के प्रति लोगों में चेतना जगाई और काफी हद तक यह अहसास कराया कि यदि बालिका की स्थिति ठीक नहीं होगी तो 'भावी माँ' की स्थिति भी ठीक नहीं होगी । जिससे अंततः सम्पूर्ण परिवार और समाज पर प्रतिकूल असर पड़ेगा । मतलब यह कि यदि हम बालिकाओं की हालत सुधार सकें तो समाज और देश की हालत सुधार सकते हैं क्योंकि बालिका अंततः जननी बनती है । वही परिवार की धुरी होती है । यदि वह अस्वस्थ होती है तो उसकी संतान अस्वस्थ होती है । यदि वह निरक्षर होती है तो उसकी संतान निरक्षर होती है लेकिन सवाल उठता है कि क्या हमारे देश में बालिका की स्थिति ठीक नहीं है ?

हमारा देश विचित्र विरोधाभासों का देश है । यहां आपको किसी मुद्दे के पक्ष में भी ढेर सारे तर्क मिल जाएंगे और विरोध में भी । हमारे ही देश में सदियों पूर्व बड़े गर्व के साथ कहा गया था कि जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता रमते हैं और हमारे ही देश में यह भी सदियों पूर्व कहा गया कि 'नारी नरक का द्वार है ।' उत्तर भारत के कई क्षेत्रों में सर्दियों से ठीक पहले लड़कियों को देवी मान कर बाकायदा उनकी पूजा की जाती है तथा तरह-तरह के पकवान खिलाए जाते हैं । यह पर्व 'कंजक' कहलाता है । विडम्बना तो देखिये कि जितने उत्साह से लड़कियों की पूजा की जाती है, उतने ही दुख से लड़कियों को परिवार पर आया अनावश्यक बोझ मान लिया जाता है । सोचिये तो जरा, किस पर यकीन किया जाए ? क्या हम मान लें कि हमारे देश में लड़कियों को बड़े स्नेह से पाला-पोसा जाता है? जन्म लेने पर उनका स्वागत किया जाता है ? उन्हें पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाया जाता है ? उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखा जाता है ? उन्हें लड़कों या बेटों के बराबर का स्थान दिया जाता है ।

आइये इन सवालों के संदर्भ में बातें करने से पहले अपने देश के संदर्भ में कुछ तथ्यों पर एक नजर डाल लें । ये तथ्य हैं-

हमारे देश में महिलाओं की सख्या लगातार गिर रही है । 1991 की जनगणना के अस्थायी आंकड़ो के अनुसार भारत में प्रति 1000 पुरुषों के अनुपात में महिलाओं की संख्या केवल 929 है । 1981 में संख्या 934 थी और 1971 में 930 थी ।

हमारे यहां हर साल पैदा होने वाली 1 करोड़ 20 लाख बालिकाओं से एक चौथाई की 15 साल की आयु तक पहुंचते-पहुंचते मृत्यु हो जाती है ।

आज भी देश के कई अंचलों में ऐसी प्रथाएं हैं, जिनके अंतर्गत लड़की को जन्म लेते ही मार दिया जाता है । ऐसे मामले अक्सर सुनने को मिलते हैं । देश के शहरी क्षेत्रों, खास तौर पर महानगरों में पेट में पलते हुए बच्चें की शारीरिक बनावट का पता लगाने की मशीन 'अर्मानयोमेंटेसिस' का दुरूपयोग करने की कई घटनाएं सामने आई है । यदि इस मशीन से पता चला कि बच्चा 'लड़की' है तो कई बार देखने में आया है, कि उसे गर्भ में ही गिरा दिया जाता है ।

लड़कियों का बचपन में विवाह कर देने की प्रथा आज भी देश के कई क्षेत्रों में विद्यमान हैं । विद्यालयों में दाखिला लेने वाली कुल लड़कियों में से केवल 30 प्रतिशत ही वहां पढ़ना जारी रखती हैं, शेष पांचवीं कक्षा तक की पढ़ाई भी पूरी नहीं करती । अंततः तो केवल 15 फीसदी लड़कियां ही स्कूली पढ़ाई पूरी कर पाती हैं ।

देश में गर्भावस्था के दौरान अनेक स्त्रियों की मृत्यु हो जाती है । 1975 में ऐसी मौतों की संख्या 7.9 प्रतिशत थी जो 1981 में बढ़कर 17.7 प्रतिशत हो गई ।

हमारे यहां 24 साल से कम आयु की जितनी स्त्रियों की मृत्यु होती है, उनमें से 13 प्रतिशत गर्भावस्था के दौरान और कई बच्चा पैदा करते समय मृत्यु की शिकार होती हैं । जाहिर है कि ऐसा उचित पौष्टिक आहार न मिलने, कमजोर सेहत तथा कच्ची उम्र में विवाह कर दिये जाने के कारण होता है ।

देश में 50 प्रतिशत से अधिक गर्भवती स्त्रियां शरीर में खून की कमी और कुपोषण की शिकार होती हैं । नौकरियों में महिलाओं की संख्या बहुत ही कम है । 1985 से 1987 के दौरान किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार भारतीय प्रशासनिक सेवा में एक ओर पुरुषों की संख्या 4209 थी तो दूसरी ओर महिलाओं की संख्या केवल 339 थी । यही स्थिति ऊपर से लेकर नीचे तक अन्य सेवाओं में भी है ।

1985 तक के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में केवल 18.88 लाख और निजी प्रतिष्ठानों में केवल 13.41 लाख महिलाएं ही काम पर लगी थीं, जबकि दोनों तरह के प्रतिष्ठानों में कार्यरत पुरुषों की संख्या क्रमशः 155.10 लाख और 49.68 लाख थी ।

ये तथ्य भारतीय समाज में बालिका जो बाद में महिला या स्त्री बनती है की स्थिति को बड़े निर्भय ढंग से उजागर करते हैं । इन तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि पुरुष वर्चस्व वाला हमारा समाज लड़की के जन्म लेने के पहले से ही उसके साथ भेदभाव करने लगता है । 'अर्मिनियोसेंटेसिस' मशीन का दुरूपयोग इस सच्चाई को प्रमाणित करता है । लड़कों की तुलना में लड़कियां जितनी अधिक संख्या में मरती हैं, उससे जाहिर हो जाता है कि उन्हें भरपेट भोजन और पौष्टिक आहार नहीं दिया जाता । लड़कियां पढ़ाई बीच में ही छोड़ देती हैं तो जाहिर है कि उनकी शिक्षा के प्रति आम भारतीय घरों में उदासीनता बरती जाती है । अक्सर घरों में लोग कहते ही रहते हैं कि 'यह पढ़-लिख कर क्या करेगी । आखिरकार इसे जाना तो पराए घर ही है ।' लड़कियां यदि हमें नौकरियों में काफी कम दिखाई देती हैं तो इससे भी यही प्रमाणित होता है कि उन्हें पढ़ने-लिखने और आगे बढ़ने के अवसरों से प्रायः वंचित रखा जाता है, हालांकि यह भी एक सच्चाई है कि घरों में सवेरे से शाम तक उन्हीं से सबसे अधिक काम लिया जाता है । पुरुषों की तुलना में यदि महिलाओं की संख्या दिन-ब-दिन कम होती जा रही है तो जाहिर है कि इसका कारण उनके लालन-पालन और विकास के प्रति हमारा उपेक्षा भाव ही है । यदि वे खून की कमी की शिकार होती हैं, दुर्बल रहती हैं , बच्चा जनते समय मौत के मुंह में चली जाती हैं और उनकी बहुत बड़ी तादाद आयु के 15 साल भी पूरे नहीं कर पाती तो जाहिर है कि हम उनके प्रति बहुत ही निर्मम हैं बल्कि कहना चाहिए कि आमानवीयता की हद तक निर्मम हैं । विचित्र बात तो यह है कि हमारी अनेक धार्मिक-सामाजिक मान्यताएं भी लड़कियों के प्रतिकूल हैं । उदाहरण के लिए माता-पिता की मृत्यु पर पिंडदान और अंतिम रस्म पूरी करने के लिए पुत्र का होना जरूरी माना जाता है ।

यहां इस बात को रेखांकित कर दिया जाना जरूरी है कि बालिकाओं के प्रति भेदभाव की जड़ें हमारे समाज में हैं और समाज में इनकी जड़ों के होने का मूल कारण लोगों की निरक्षरता है । जहां साक्षरता का प्रसार हो गया है, वहां लड़के

और लड़की के प्रति भेदभाव तो है किन्तु अपेक्षाकृत कम। जहां तक सरकारी योजनाओं, कार्यक्रमों और कानूनों का प्रश्न हैं, हम साफ तौर पर देख सकते हैं कि आजादी के बाद लड़कियों व महिलाओं के प्रति भेदभाव व दुराग्रह दूर करने के कदम काफी हद तक उठाए गए हैं। देश की आजादी के तत्काल बाद महिलाओं को समानता देने के लिए पहले कदम के तौर पर पुरुष के ही समान मतदान का अधिकार दिया गया। यह नेहरू-युग का पहला महत्वपूर्ण कार्य था, क्योंकि हमें भूलना नहीं चाहिए कि अनेक उन्नत देशों तक में महिलाओं को मताधिकार बहुत बाद में प्राप्त हुआ है। उदाहरणार्थ उन्हें अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, फ्रांस और स्वीटजरलैंड जैसे आधुनिक देशों में वोट देने का अधिकार क्रमशः 1920, 1928, 1945, 1946 और 1971 में प्राप्त हुआ। हमारे पड़ोसी पाकिस्तान में उन्हें यह अधिकार 1956 में मिला।

नेहरू-युग की एक और उपलब्धि यह है कि स्वतंत्र भारत के संविधान के अंतर्गत लड़कियों को शिक्षा और विकास के समान अवसर व अधिकार दिये गए। नेहरूजी के प्रयास से 8 मई 1955 को पास किए गए हिंदू कोड बिल में स्त्रियों को विवाह और तलाक का अधिकार प्राप्त हुआ जिसके अंतर्गत सदियों से पुरुष की दासी और सम्पत्ति समझी जाने वाली स्त्री जाति को पहली बार सम्पत्ति के कानूनी अधिकार मिले। नेहरूजी के समय 1960 एवं 1961 में दहेज विरोध कानून बना। इसी तरह लड़कियों के विवाह की आयु बढ़ाने का कानून भी पंडितजी के ही समय में ही लागू हुआ जिसमें बाद में भी संशोधन किए गए।

पंडित जी के कार्यकाल से बाल कल्याण की दिशा में अनेक कदम उठाए गए, जैसे केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना, जिसका मुख्य उद्देश्य ही बच्चों, खास तौर पर लड़कियों व महिलाओं के विकास के लिए काम करना है। इस बोर्ड ने कामकाजी व बीमार माताओं के बच्चों के लिए शिशु विहार तथा पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने वाली गरीब लड़कियों के लिए शिक्षा के संक्षिप्त पाठ्यक्रमों तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण की योजनाओं को क्रियान्वित किया है।

आज बाल विकास, जिसके तहत बालिकाओं का विकास एक प्रमुख मुद्दा है, के अंतर्गत कई दिशाओं में कदम बढ़ाए जा चुके हैं। इनमें से प्रमुख कदम हैं-

1. राष्ट्रीय बाल नीति। 2. माँ और बच्चों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में समेकित बाल विकास सेवाएं। 3. केन्द्रीय महिला और बाल विकास विभाग की स्थापना। 4. इस विभाग के अंतर्गत राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान की स्थापना। 5. राष्ट्रीय बाल बोर्ड। 6. राष्ट्रीय बाल कोष। 7. राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम। 8. मातृ तथा शिशु स्वास्थ्य सेवाओं को परिवार कल्याण के साथ जोड़ना। 9. राष्ट्रव्यापी स्तर की पौष्टिक आहार संबंधी परियोजनाओं का क्रियान्वयन। 10. युनिसेफ के संसाधनों का बच्चों, खास तौर पर बालिकाओं के हित में उपयोग।

इनके अतिरिक्त विकलांग बालक-बालिकाओं, बाल श्रमिकों, जिनमें लड़कियों की संख्या काफी अधिक है, के कल्याण के अन्य अनेक कार्यक्रम भी केन्द्र तथा राज्य स्तर पर चलाए गए हैं। निराश्रित तथा अनाथ लड़के-लड़कियों के लिए भी अनेक कल्याण कार्यक्रम अमल में लाए गए हैं।

इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन तमाम उपायों और 'सार्क बालिका वर्ष' के आयोजन के बावजूद लड़कियां आज भी भेदभाव की शिकार हैं, जिसके फलस्वरूप वे ऊपर नहीं उठ पा रही हैं। उनमें आत्म विश्वास नहीं आ पा रहा है, वे आत्मनिर्भर नहीं हैं तथा जिन्दगी की दौड़ में पिछड़ी हुई हैं। हमें भूलना न चाहिए कि यदि वे इसी तरह पिछड़ी रहीं तो समाज भी पिछड़ा रहेगा। एक बार किसी फ्रांसीसी विद्वान से एक देश की चर्चा करते हुए पूछा था कि उस देश के बारे में तुम्हारी क्या राय है? उत्तर में फ्रांसीसी विद्वान ने कहा था "पहले मुझे यह बताओ कि उस देश में महिलाओं की स्थिति कैसी है? निश्चय ही एक बहुत महत्वपूर्ण उत्तर था, क्योंकि यदि महिलाओं की स्थिति ठीक नहीं है तो देश की भी स्थिति ठीक नहीं होगी। आखिर देश का 50 प्रतिशत हिस्सा तो वे ही हैं और महिलाओं की स्थिति तभी ठीक होगी जब बचपन से ही उनकी ओर यानी बालिकाओं की ओर ध्यान दिया जाए। इसके लिए सरकारी स्तर पर किए गए प्रयास ही काफी नहीं हैं, बल्कि वे तो नाकाफी हैं। जरूरत तो इस बात की है कि लड़कियों के बारे में समाज के रवैये में परिवर्तन आए और समाज के रवैये में तभी परिवर्तन आएगा जब पुरुष की मानसिकता में परिवर्तन आएगा क्योंकि आखिरकार हमारे समाज पर वर्चस्व तो पुरुष का ही है।

सी 2/3
ईस्ट आफ कैलाश
नई दिल्ली-110065

ग्रामीण विकास कार्यक्रम - कितने सार्थक

देवेन्द्र उपाध्याय

स्वतंत्रता से पूर्व गांवों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। वे तमाम तरह की बुनियादी सुविधाओं से वंचित थे। उनसे न तो सड़क संपर्क ही था और न किसी तरह का कोई संचार संपर्क। ऐसे में ग्रामीण क्षेत्र देश के अन्य भू-भागों से आम तौर से कटा रहता था।

स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण क्षेत्रों को भी राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल करने के प्रयास शुरू हुए। पंचवर्षीय योजनाएं समग्र आर्थिक विकास की दिशा में देश को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुईं। ग्रामीण विकास के बारे में एक नयी सोच पैदा हुई। गांवों को विकास की गति से जोड़ने के लिए भारत के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने पंचायती राज व्यवस्था पर विशेष बल दिया। स्वतंत्रता प्राप्ति की पूर्व संध्या पर 14 अगस्त 1947 को संविधान सभा में उन्होंने कहा--

"भारत की सेवा का अर्थ करोड़ों पीड़ितों की सेवा है। इसका अर्थ दरिद्रता और अज्ञानता तथा अवसर की विषमता का अंत करना है। हमारी पीढ़ी के सबसे बड़े आदमी की यह आकांक्षा रही है कि प्रत्येक आंख के प्रत्येक आंसू को पोंछ दिया जाय। ऐसा करना हमारी शक्ति से बाहर हो सकता है, लेकिन जब तक आंसू हैं और हमारी पीड़ा है तब तक हमारा काम पूरा नहीं होगा।" महात्मा गांधी ने भी कहा था - "आजादी सबसे निचले स्तर से शुरू होनी चाहिए। इस प्रकार हर गांव एक गणराज्य या पंचायत होगा, जिसे सभी प्रकार के अधिकार होंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि हर गांव को आत्मनिर्भर बनना होगा और उसे अपने काम खुद करने के काबिल बनना होगा। इसे इतना समर्थ बनना होगा कि सारी दुनिया के खिलाफ होने पर भी यह अपनी रक्षा खुद कर सके।"

महात्मा गांधी और पं. नेहरू तथा अन्य राष्ट्र निर्माताओं ने गांवों के विकास के बारे में जो भी सोचा था क्या इन वर्षों में गांवों का सर्वांगीण विकास हो पाया? जो योजनाएं गांवों के लिए बनीं, क्या उनका लाभ गांव के उस आदमी तक पहुंचा जिसे महात्मा गांधी ने दरिद्रनारायण कहा था? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर स्वतंत्रता के चवालीस साल बाद भी हवा में तैर रहा है।

स्वतंत्रता के वक्त देश की 90 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती थी। कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने "भारत माता ग्राम वासिनी" संभवतः इसी अर्थ में कहा था। गांव हमारे लेखकों, कवियों का आधार रहे हैं; गांवों के शोषितों-पीड़ितों को ऊंचा उठाने के लिए वे अपना स्वर ऊंचा उठाते रहे। वह स्वर तो आज बहुत कम सुनायी देता है पर हां गांवों के जिस उत्थान की बात की जाती रही है उसका स्वर ऊंचा हुआ है पर इसमें वास्तविकता उतनी अधिक नहीं रही जितना राजनीतिक उद्देश्य। यह कहा जाता है कि गांवों के गरीबों के उत्थान के लिए बहुत कुछ किया गया। अनेक तथ्य और आंकड़े इसके समर्थन में मिलते हैं लेकिन क्या यह सच नहीं है कि हमारे अनेक गांव पीने के पानी के लिए तरस रहे हैं। मीलों दूर तक संपर्क सड़क नहीं है, बिजली नहीं है, स्कूल और चिकित्सा सुविधाएं नहीं हैं। जिस बेरोजगारी उन्मूलन के लिए स्वतंत्रता के बाद से लगातार बल दिया जाता रहा है क्या वह प्रयास अब तक अपनी सार्थकता खोज पाया है? आज भी 75 प्रतिशत जनता गांवों में रहती है। शहरों की ओर बढ़ते पलायन के कारण और शहरों के निकट बसे गांवों के शहरीकरण ने ग्रामीण आबादी को प्रभावित किया है।

ग्रामीण विकास के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम चल रहा है। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के चुने हुए परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने में मदद करना है। यह देश के सभी विकास खंडों में चल रहा है। इसके अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र के लक्षित समूह के उन परिवारों को आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी जाती है जिनकी वार्षिक आय 4800 रुपये के निर्धारित स्तर से कम होती है। गरीबी रेखा की आय, जिसे गरीबी का स्तर कह सकते हैं 6400 रुपये निधारित की गई है।

इसी कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और

बच्चों के विकास का कार्यक्रम चलाया जा रहा है । इस उपयोजना का उद्देश्य गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीण परिवारों की महिला सदस्यों को उनकी दक्षता एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप उन्हें आय प्राप्त करने के अनुकूल अवसर उपलब्ध कराना है । यह देश के 161 जिलों में चल रहा है ।

स्वरोजगार के लिए ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण देने की योजना ट्राइसेम है । इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के 18 से 35 वर्ष आयु वर्ग के गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों के युवाओं को तकनीकी दक्षता उपलब्ध कराना है जिससे उन्हें स्वरोजगार के अवसर मिल सकें ।

जवाहर रोजगार योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के बेरोजगार एवं आंशिक रोजगार प्राप्त लोगों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना है । इस योजना को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गांरटी कार्यक्रम को मिलाकर बनाया गया है ।

देश के उन शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में सूखे की आशंका वाला क्षेत्र कार्यक्रम चलाया जा रहा है, जहाँ मिट्टी के कटाव, पेड़ों और वनस्पतियों के अत्यधिक कटाव और पानी की कमी आदि के कारण पर्यावरण का संतुलन काफी बिगड़ गया है । मरूस्थली क्षेत्रों के विकास के लिए मरूस्थल विकास कार्यक्रम चलाया जा रहा है ।

भूमि सुधारों की दिशा में कई प्रारंभिक प्रयास हुए लेकिन पिछले चार दशकों से अधिक समय में जमींदारी उन्मूलन के बाद भूमि सुधारों का कार्य निराशाजनक रहा है । आज भी गांवों में भूमि हदबंदी कानून का खुलेआम उल्लंघन होता है और उल्लंघन करने वालों का कुछ नहीं बिगड़ता । भूमिहीनों को खेती के लिए जमीन और बेघरों को घर के लिए प्लाट आंबटित करने के कार्य बड़े पैमाने में हो रहे हैं । आंकड़ों में हर वर्ष वृद्धि हो रही है लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि अधिकांश मामलों में जमीन का पट्टा नहीं मिलता, कई मामलों में कब्जा भी नहीं मिलता । ऐसे आंकड़े बढ़ाने वाले कार्यक्रमों से गरीबी उन्मूलन का काम महज कागजी बना रह जाता है । जरूरतमंदों और गरीबों के लिए बनायी गयी योजनाओं का लाभ ऐसे लोग उठा ले जाते हैं जो संपन्न प्रभावी और निरंकुश प्रवृत्ति के होते हैं ।

प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिंह राव ने 22 जून 1991 को राष्ट्र के नाम अपने पहले संदेश में कहा - "...हम इस बात को सुनिश्चित करेंगे कि जो हमारे गरीबों के लिए कार्यक्रम हमने बनाये हैं उनमें कोई कमी न आने पाये और देश के विकास की जो गति है वो मंद न पड़े । ये दोनों बातें हम अवश्य सुनिश्चित करेंगे ।"

उन्होंने यह भी कहा - "देहात के गरीबों पर विशेष ध्यान हमेशा सरकार देती आई है । और आज भी अधिक देना चाहती है । ज़मीन पर दबाव है आज, मतलब जमीन पर या खेती पर आजीविका पाने वाले लोगों की जो एक बहुत बड़ी संख्या है उसे कम करना है और उसके लिए रोजगार के दूसरे साधन भी मुहैया करने हैं । उद्योग वहां चलाने हैं और जो भी खर्च इस पर किया जावेगा उसका पूरा-पूरा लाभ जिनको मिलना चाहिए, जिनके लिए खर्च किया जाता रहा है उनको अवश्य मिले, बीच में इधर-उधर कहीं जाया न हो इसको सुनिश्चित करना है और ये हम अवश्य करेंगे ।"

सरकार ने हमेशा यह प्रयास किया है कि गांवों में आर्थिक विषमताएं दूर हों, रोजगार के अवसर अधिकाधिक उपलब्ध कराये जायें और हर गांव को शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराया जाय । इसके लिए निधियों का भी पर्याप्त आबंटन किया जाता है लेकिन निचले स्तर तक निर्धारित राशि नहीं पहुंच पाती है ।

ऐसा नहीं है कि सरकार ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों में किसी तरह की उदासीनता बरतती है बल्कि वास्तविक खामी उनके कार्यान्वयन में ही है । उदारहण के रूप में ग्रामीणों को पशुओं की खरीद के लिए ऋण दिया जाता है लेकिन होता यह है कि एक ही पशु कई बार बिकता है और राशि का दुरूपयोग होता है । सरकारों ने ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण मुक्ति के नाम पर विभिन्न राज्यों में दस-दस हजार रूपये के ऋण माफ किये । जहां तक इस ऋण माफी की भावना का सवाल है उस भावना से किसी को कोई दुराव नहीं हो सकता है लेकिन जिस तरह से साधारण लोगों को इसका कोई लाभ नहीं मिला उससे उनमें असंतोष व्याप्त होना स्वाभाविक ही है । ऋण मुक्ति का लाभ ऐसे लोगों को मिला जो आदतन कर्ज लेते है या जो संपन्न वर्ग के हैं । इससे सबसे बड़ा संकट सहकारी ऋण समितियों, सहकारी बैंकों पर पड़ा जिनकी वित्तीय स्थिति संकटपूर्ण हो गयी । राज्य सरकारों ने इन सहकारी संस्थानों संस्थानों को स्वयं कोई आर्थिक मदद नहीं दी, दूसरी ओर जो गरीब कर्जदार थे उनका कर्जा भी माफ नहीं हुआ ।

ग्रामीण क्षेत्रों में जल की आपूर्ति राज्य का विषय है । इसके लिए राज्यों के बजट में 1951 से ही निधियों का प्रावधान रखा जाता रहा है । सातवीं योजना के अंत तक 74 हजार

समस्याग्रस्त गांवों में से 8365 गांव शेष रह गये जिन्हें आठवीं योजना में जल आपूर्ति उपलब्ध करायी जानी है । वर्ष 1986 में राष्ट्रीय पेय जल मिशन का गठन किया गया । मारडेल प्लाटा में 1977 में जल संबंधी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में सन् 2000 तक सबको शुद्ध पेयजल सुलभ कराने का निर्णय लिया गया था । नयी दिल्ली में सितंबर 1990 में 1990 के दशक के लिए स्वच्छ पेयजल तथा स्वच्छता संबंधी विश्व सम्मेलन हुआ था ।

भारत के नियंत्रक महालेखा परीक्षक (सी.ए.जी) ने अपने 1991 की संख्या 1 प्रतिवेदन में, जो कि 31 मार्च 1990 को समाप्त हुए वर्ष के लिए हैं, ग्रामीण पेयजल मिशन के क्रियान्वयन की अनेक खामियों का उल्लेख किया है । उक्त प्रतिवेदन के अध्याय 3 में कहा गया है कि 1986-90 के दौरान आवृत किये जाने वाले 1,37,155 गांवों के प्रति, 8332 छितरे गांवों को छोड़ते हुए 1,28,823 गांव (94 प्रतिशत) आवृत किये गये थे । समस्याग्रस्त गांवों को शमिल किये जाने में आंशिक रूप से आवृत किये गये गांव भी शामिल थे । इन गांवों में मानदंडों के अनुसार पेयजल की पूर्ण मात्रा में आपूर्ति नहीं की जा रही थी । मार्च 1990 के अंत में, मिशन पूर्व अवधि से संबंध रखने वालों सहित आवृत करते हुए आंशिक रूप से आवृत गांव 1,18,163 थे । मिशन के पास आंशिक रूप से आवृत गांवों में आवर्तन की सीमा के बारे में कोई सूचना नहीं थी ।

जल आपूर्ति की गुणवत्ता प्रबोधन को अभिप्रेत महत्व प्राप्त नहीं हुआ । जल की गुणवत्ता की जांच के लिए नवंबर 1989 तक 100 प्रयोगशालाएं संचालनीय बनने हेतु स्वीकृत की गयी थीं । जून 1990 तक केवल 33 प्रयोगशालाएं ही स्थापित की जा चुकी थीं ।

गांवों में पेयजल रासायनिक तथा जीवाणु विज्ञानीय संक्रमण की समस्या से निपटने में प्रगति धीमी थी ।

प्रतिवेदन में कहा गया था कि निधियों का मोचन परियोजना की आवश्यकता से मेल नहीं खाता था । इसके अलावा प्रतिवेदन में अनेक खामियों का उल्लेख किया गया है ।

इस तरह से यह देखा गया है कि योजनाओं का सही ढंग से क्रियान्वयन नहीं हो पाता है जिसकी वजह से जिन लोगों को उसका लाभ मिलना चाहिए वह नहीं मिल पाता है ।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वैच्छिक गतिविधियों को उन्नत बनाने के लिए कापार्ट (लोक कार्यक्रम तथा ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद) एक केंद्रीय एजेंसी है । परिषद का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को फैलाना और उसको उन्नत बनाकर उसका इस्तेमाल करना है । यह विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए स्वैच्छिक संगठनों को सहायता उपलब्ध कराता है । वर्ष 1985-86 से 1989-90 में इसे विभिन्न कार्यों के लिए 59.42 करोड़ रुपये तथा वर्ष 1990-91 में 23.65 करोड रुपये की निधियां सौंपी गयी । वर्ष 1990-91 में इसने 17.41 करोड़ रुपये की परियोजनाएं स्वीकृत की थी ।

वर्ष 1990-91 के दौरान राष्ट्रीय ग्रामीण विकास निधि के अंतर्गत विभिन्न ग्रामीण विकास परियोजनाओं के लिए 72,39,600 रुपये की निधियां जारी की गयीं ।

ग्रामीण विकास का अर्थ सकल राष्ट्रीय उत्पाद या एन.एन.पी. (औसत हिसाब से) में वृद्धि करना है बल्कि समाज में अधिक समानता लाना है । इसके लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के कार्यक्रमों आदि के मामलों में अधिकाधिक सामाजिक सेवाएं उपलब्ध करानी होंगी । भूमि सुधार कार्यक्रम को और प्रभावी बनाने के लिए इसे संविधान की नवीं अनुसूची में शामिल कर लिया गया है यह सही दिशा में उठाया गया कदम है लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में निहित स्वार्थों का आतंक खत्म करना आवश्यक है क्योंकि यही तत्व भूमि सुधारों के विरोधी हैं । आबादी जिस तेजी से बढ़ रही है उसके कारण खेती छोटी जोतों में बंटती जा रही है जिससे भूमि पर दबाव बढ़ता जा रहा है । इसलिए सहकारी खेती को प्रोत्साहन देकर भूमिहीनों को उसमें शामिल करने से उनकी उपयोगिता सिद्ध हो सकती है ।

ग्रामीण विकास में जन सहयोग को कम और नौकरशाही को अब तक अधिक महत्व मिलता रहा है । इसका कारण यह है कि योजनाएं निचले स्तर से नहीं बनती बल्कि केन्द्र और राज्य सरकारें उन्हें ऊपर से तैयार करके उन्हें कार्यान्वियन के लिए स्थानीय अधिकारियों को सौंप देती हैं ।

सी—7/18 ए, लारेंस रोड
दिल्ली - 110035

सामाजिक कार्यकर्ताओं की भूमिका महत्वपूर्ण है

शंकर भट्ट

इस शताब्दी के शुरू के दशकों तक हमारे देश में बाल विवाह बहुत आम प्रथा थी। गोद के या घर आंगन में खेलने की आयु के अबोध बच्चों को विवाह सूत्र में बांध दिया जाता था और उन्हें 'सयाना' होने पर विवाहित होने का अचानक बोध होता था। ऐसी स्थिति में लड़के-लड़की के शारीरिक, मानसिक विकास की प्राकृतिक प्रक्रिया में गतिरोध आ जाता था। सबसे अधिक असर उनकी पढ़ाई पर पड़ता था। लड़कियों की पढ़ाई का चलन तो वैसे ही नहीं था और लड़कों के लिए अध्ययन के रास्ते अवरूद्ध जाते थे।फिर भी अनेकों उदाहरण गिनाए जा सकते हैं जिनमें लड़कों ने विवाह-बंधन के बावजूद सतत अध्ययन जारी रखा और विभिन्न क्षेत्रों में नाम कमाया। कुछ जागरूक लोग अपनी लड़कियों को भी पढ़ना-लिखना सीखने या आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करते थे।

आध्यात्मिक गुरू स्वामी रामकृष्ण परमहंस, न्यायविद, समाज सुधारक व इतिहासकार महादेव गोविन्द रानडे व शिक्षाविद तथा महिला शिक्षा के प्रबल पक्षधर ढोंडो केशव कर्वे जो बाद में महर्षि कर्वे के नाम से प्रसिद्ध हुए, ये सब विभूतियां उन्नीसवीं शताब्दी में बाल विवाह प्रथा की चपेट में आयीं। विवाह के समय इनकी पत्नियों की आयु 6 से 9 वर्ष के बीच ही थी। लेकिन अल्पायु में विवाह बंधन इनके विकास व जीवन लक्ष्य में बाधा नहीं डाल पाया। लेकिन ये उदाहरण केवल अपवाद ही कहे जा सकते हैं। बाल विवाह के साथ-साथ बेमेल विवाह भी प्रायः होते थे। छोटी, कच्ची या काफी कम उम्र की लड़कियां काफी अधिक अधेड़ उम्र या वृद्ध पुरुषों के साथ गरीबी, दबाव, या अन्य कारणों से ब्याह दी जाती थीं। इन बेमेल व बाल विवाहों के परिणाम प्रायः दुखद होते थे। पारिवारिक कलह, तनाव, संघर्ष हो जाते थे। वैधव्य दुख के अलावा पीड़ा व संताप का कारण बनता था। वर्ष 1921 में मात्र एक वर्ष से कम आयु की हिंदू विधवा कन्याओं की संख्या 612 थी। उस वर्ष 2024 विधवा कन्याएं ऐसी थीं जिनकी आयु मात्र पांच वर्ष या उससे भी कम थी। दस वर्ष से कम आयु की 97,857 कन्याएं विधवा हुई व 15 वर्ष से कम आयु की विधवाओं की संख्या 3,32,024 थी।

वर्तमान शताब्दी के प्रत्येक दशक में लड़कियों की विवाह के समय आयु क्रमिक रूप से धीरे-धीरे बढ़ती गयी। 1931 में हिंदु समाज में लड़कियों का विवाह सामान्यतः 13 वर्ष की आयु में होता था जबकि मुस्लिम समाज में यह आयु 14 से 15 वर्ष के बीच रहती थी। इस तथ्य से यह गलतफहमी दूर हो जानी चाहिए कि कन्याओं की जल्दी शादी का प्रचलन केवल हिंदुओं में ही था। चालीस वर्ष बाद 1971 में सभी समुदायों में विवाह के समय लड़कियों की आयु 16-17 वर्ष हो गयी जबकि लड़कों में विवाह की आयु 22-26 वर्ष थी। इसके दस वर्ष बाद 1981 में लड़कियों में औसत विवाह आयु बढ़कर 18-38 वर्ष तक हो गयी जो कि लड़कियों के विवाह के लिए कानूनी न्यूनतम 18 वर्ष की आयु से अधिक है। यह कानूनी न्यूनतम आयु, वर्ष 1976 में बाल विवाह प्रतिबंध अधिनियम, 1929 में फिर संशोधित करके निर्धारित की गयी। वर्ष 1981 में लड़कों के लिए विवाह की औसत आयु 23-27 वर्ष तक हो गयी थी।

विभिन्न राज्यों में यह औसत अलग-अलग रहा है व कुछ सबसे अधिक जनसंख्या वाले राज्यों में लड़कियों की विवाह के समय औसत आयु राष्ट्रीय औसत से कम रही है। यह तथ्य नीचे दी गयी तालिका से स्पष्ट हो जाता है।

विवाह के समय आयु		**1971**	**1981**
राष्ट्रीय औसत	**पुरुष**	22.36	23.27
	स्त्री	17.16	18.38
राष्ट्रीय औसत से कम(केवल स्त्री)		1971	1981
आंध्र प्रदेश		16.22	17.25
बिहार		15.27	16.53
हरियाणा		16.64	17.67
कर्नाटक		17.80	19.20
मध्य प्रदेश		14.99	16.52
उड़ीसा		17.29	19.04
राजस्थान		15.07	16.09
उत्तर प्रदेश		15.45	17.77
महाराष्ट्र		17.54	18.76

इन दोनों दशकों में केरल, गुजरात, पंजाब व तमिलनाडु में औसत राष्ट्रीय औसत से अधिक रहा है ।

राजस्थान में स्थिति (15.07 व 16.09) इन दो दशकों में सबसे निराशाजनक थी । इस राज्य में बाल विवाहों की संख्या बहुत अधिक होती है जोकि चिंता का विषय है तथा समाज सुधारकों व कानून कार्यान्वयन एजेंसियों के लिए गंभीर चुनौती है ।

इन औसत आंकड़ों को अंतिम नहीं माना जा सकता । हालांकि वर्ष 1981 में देश में लड़कियों की विवाह के समय औसत आयु 18.38 थी लेकिन 14 वर्ष से कम आयु की लड़कियों के विवाह भी हुए और यह भी सत्य है कि यह आयु 20,21,22 या इससे भी अधिक अर्थात औसत से काफी अधिक भी रही ।

वर्ष 1981 में 10 से 14 वर्ष की आयु के बीच विवाह सूत्र में बांध दिए लड़के-लड़कियों की संख्या 38,05,240 थी । इनमें बाल वधुओं की संख्या अधिक अर्थात् 26,32,858 थी । अर्थात् 10-14 वर्ष की अनेक लड़कियों का विवाह इस आयु वर्ग से ऊपर आयु वाले लड़कों के साथ किया गया । बाल विवाहों की समस्या शहर व गांव दोनों अंचलों में विद्यमान है हालांकि गांवों में यह अधिक है । वर्ष 1981 में शहरी क्षेत्रों में 10-11 वर्ष की आयु में विवाह मंडप में बैठा दी गयी लड़कियों की संख्या 12,30,154 थी व 12-13 वर्ष की आयु की ऐसी लड़कियों की संख्या 28,01,685 थी । लेकिन सबसे अधिक 85,45,263 लड़कियां 14-15 वर्ष आयु वर्ग की थीं ।

कम उम्र में लड़कियों की शादी कर देने की प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम होती गयी है । यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि वर्ष 1981 में शहरी क्षेत्र में बीस वर्ष से नीचे आयु की केवल 1,03,767 लड़कियां ही ऐसी थीं जिनकी शादी 10-11 वर्ष की उम्र में ही हो गयी थी । यह संख्या 20 वर्ष तक आयु वाली कुल विवाहित लड़कियों का केवल 10 प्रतिशत थी । लेकिन यह भी एक तथ्य है कि बाल विवाह अब भी होते हैं व राजस्थान, बिहार तथा मध्य प्रदेश में यह गंभीर समस्या है जबकि कुछ अन्य राज्यों में भी यह समस्या कमोबेश विद्यमान है । यह समस्या एक गंभीर चुनौती है ।

प्रश्न यह उठता है कि बाल विवाह क्यों होते हैं और इसे रोकने के लिए क्या उपाय किए जाने चाहिए । केरल के उदाहरण ने सिद्ध कर दिया है कि महिला साक्षरता और जनसंख्या विकास दर के बीच गहरा संबंध है । केरल और कुछ अन्य राज्यों में साक्षरता की दर बहुत अधिक है और जनसंख्या वृद्धि दर राष्ट्रीय औसत से काफी कम है । पुरुषों व स्त्रियों दोनों की साक्षरता दर बाल विवाह की प्रथा पर प्रभावी नियंत्रण का काम करती है । परिवार नियोजन, टीका लगाने, समन्वित बाल विकास कार्यक्रम तथा बाल विवाह प्रथा अथवा इसका प्रतिरोध-ये सब बातें एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं । जो लोग इनमें से किसी एक कार्यक्रम की जानकारी रखते हैं वे परिवार में बिरादरी या पंचायत के लड़कियों की जल्दी शादी के बारे में दबाव को टाल सकने की स्थिति में हो जाते हैं । समाजशास्त्रियों का कहना है कि ये सामूहिक दबाव लोगों को लड़कियों का विवाह जल्दी कर देने के लिए मजबूर करते हैं ।

एक अन्य कारण यह है कि परिवार में लड़कियां एक से अधिक होने पर उनके विवाह पर खर्च से बचने के लिए भी उनका विवाह जल्दी कर दिया जाता है । दो लड़कियों की शादी एक साथ कर देने से खर्चा बच जाता है । सयानी लड़की के गुमराह होने की चिंता से मुक्त होने के लिए भी विशेषकर अशिक्षित या कम शिक्षित लोग लड़की की शादी जल्दी कर देते हैं ।

सामान्य आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति, और साक्षरता का प्रसार नगरों में औद्योगिक समाज के विकास तथा गांवों में किसानों के आत्मनिर्भर होने के साथ जुड़ा हुआ है और यह बाल विवाह को रोकने में सहायक होता है । साथ ही कानून को भी कड़ाई से लागू करना आवश्यक है । जब सन् 1930 में बाल विवाह प्रतिबंध अधिनियम पहली बार लागू किया जाना था तो इससे पूर्व ही लड़कियों का विवाह कर देने की लोगों में भारी उतावली देखी गयी थी । इसलिए कानून को मजबूत बनाने की आवश्यकता है ।

अभी पुलिस बाल विवाह अर्थात निर्धारित न्यूनतम से कम आयु वाली लड़की के विवाह के मामले पर केवल लिखित शिकायत पर ही कार्रवाई करती है । वर्ष 1974 में महिलाओं की स्थिति के बारे में स्थिति का अध्ययन करने वाली समिति ने सिफारिश की थी कि बाल विवाह प्रतिबंध अधिनियम के अंतर्गत मामले को पुलिस के हस्तक्षेप योग्य अपराध बना दिया जाए और इस कानून को लागू करने के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किए जाएं लेकिन सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और वर्ष 1976 में लड़कियों के लिए विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाकर 18 वर्ष कर दी । उपरोक्त समिति ने यह भी कहा था कि पुलिस को जिन अधिकारों की सिफारिश उसने की है उनका दुरुपयोग हो सकता है । अभी हमारे यहां जन्म

पंजीकरण की पक्की व्यवस्था नहीं है । अतः किसी स्त्री या पुरुष की सही आयु सिद्ध कर पाने का कोई कानूनी तरीका उपलब्ध नहीं है ।

इसलिए कानून को मजबूत बनाने के साथ-साथ इसके दुरुपयोग की संभावना का भी ध्यान रखना होगा । निर्दोष लोगों को तंग करने के लिए कानून के इस्तेमाल की संभावना को भी रोकना होगा । समिति ने यह भी सिफारिश की थी कि लड़कियों को बालवस्था में हुए विवाह को नकारने का अधिकार होना चाहिए और न्यायालयों को बाल विवाह के मामले में किसी को छोड़ना नहीं चाहिए, कोई नरमी नहीं दिखानी चाहिए परन्तु सामाजिक उपाय के लिए अधिक कानूनी अधिकार देने से पहले उसके गंभीर परिणामों पर खूब सोच-विचार कर लेना चाहिए । दरअसल आवश्यक यह है कि सामाजिक कार्यवाही तेज की जाए, सामाजिक कार्यकर्ता कानूनी एजेंसियों पर दबाव डालकर वर्तमान कानून को पूरी तरह लागू कराने के लिए काम करें । इसके साथ ही लोगों को शिक्षित करना, जागरूक करना बहुत आवश्यक है ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है लोगों को परिवार नियोजन, टीकाकरण, बाल विकास कार्यक्रम की जितनी अधिक जानकारी होगी, वे विवाह के लिए कानून में निर्धारित न्यूनतम आयु के बारे में अधिक आश्वस्त तथा प्रोत्साहित होंगे । लोगों को इस सम्बन्ध में शिक्षित करने में जनसंचार माध्यम अपनी भूमिका निभा रहे हैं । इन कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी बनाकर यह अभियान आगे बढ़ाया जा सकता है लेकिन सबसे अधिक सक्रिय भूमिका सामाजिक कार्यकर्ताओं को निभानी होगी और उन्हें बालिकाओं के उत्थान के लिए आगे आना होगा और बाल विवाहों को रोकने में प्रभावी योगदान करना होगा ।

अनुवाद — ओम प्रकाश दत्त
43 मैत्री अपार्टमेन्टस, ए-3
पश्चिम विहार, दिल्ली-63

इलाहाबाद विकास प्राधिकरण, इलाहाबाद

2 अक्टूबर 1991 गाँधी जयन्ती के शुभ अवसर पर नागरिकों से सहयोग की अपील

1. राज्य आवास नीति के अन्तर्गत प्राधिकरण 8 वीं पंचवर्षीय योजना में लगभग 30,000 भवन निर्मित करेगा । इस मामले में निर्बल व अल्प आय वर्ग के व्यक्तियों के लिए 70% भवन/भूखण्ड होंगे । इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्राधिकरण द्वारा 1000 एकड़ भूमि अध्याप्ति की जा रही है ।
2. सिविल लाइन क्षेत्र में अनेकों बहुमंजिली आवासीय एवं व्यावसायिक भवनों का निर्माण प्रस्तावित किया जा रहा है ।
3. स्वच्छ पर्यावरण के लिए प्राधिकरण द्वारा नेहरू पार्क, सरस्वती घाट व भारद्वाज पार्क का विकास किया गया है तथा चन्द्रशेखर आजाद पार्क का सौन्दर्यीकरण कराया जा रहा है ।
4. जिस भूखण्ड पर भवन निर्माण किया जाना है उसका मानचित्र विकास प्राधिकरण द्वारा अवश्य स्वीकृत कराया जाय अन्यथा अनाधिकृत निर्माण को ध्वस्त कराया जायेगा ।
5. प्राधिकरण द्वारा भू-विन्यास स्वीकृत किये बिना किसी सहकारी समिति से प्लाट न क्रय करें । लीज की भूमि क्रय करने से पूर्व यह अवश्य देख लें कि लीज का नवीनीकरण शासन/जिलाधिकारी के द्वारा हो गया है अथवा नहीं ।
6. विकास प्राधिकरण द्वारा आबंटित भूमि/भवन किसी अन्य आबंटी से तब तक क्रय न करें जब तक कि मूल आबंटी सम्पूर्ण धन जमा करके अपने नाम रजिस्ट्री न करा लें । प्राधिकरण की अनुमति के बिना कोई भूमि/भवन क्रय न करें ।
7. यदि कोई व्यक्ति अनाधिकृत निर्माण कर बेचता है तो उसे क्रय न करें ।
8. यदि आपने हायर परचेज प्रणाली पर भवन क्रय किया है तो नियमित किश्त जमा करें अन्यथा वसूली पत्र जारी होने पर जिलाधिकारी द्वारा 10% वसूली व्यय लिया जायेगा ।

श्रीशकुमार जायसवाल	राजाराम उपाध्याय	प्रभुनाथ मिश्र
उपसचिव	सचिव	उपाध्यक्ष
वि.प्रा. इलाहाबाद	वि.प्रा. इलाहाबाद	वि.प्रा. इलाहाबाद

नागरिकों की सुविधा के लिए जन सम्पर्क प्रकोष्ठ
इन्दिरा भवन सातवीं मंजिल पर स्थापित की गयी है

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु प्रभावी उपाय

डा० सी०एम० चौधरी

ग्रामीण विकास से आशय ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले अनेकानेक निम्न आय वर्ग के लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाना और उनके विकास के क्रम को आत्मपोषित बनाना है । भारत में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का इतिहास काफी पुराना है । भारत में इस प्रकार के कार्यक्रमों का सूत्रपात सहकारी समिति अधिनियम, 1904 के पश्चात् ही हुआ है । 15 अगस्त 1947 को हमारा देश आजाद हुआ तथा 1951 से हमारे देश में योजना-युग प्रारम्भ हुआ है । इसी समय ग्रामीण विकास हेतु अनेक कार्यक्रम केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने अपने हाथ में लिये ।

सर्वप्रथम 2 अक्टूबर 1952 को स्वतंत्र भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय विस्तार योजनायें शुरू की गई जिनका उद्देश्य ग्रामवासियों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में आमूल चूल परिवर्तन लाकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना था । इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत कृषि एवं सम्बद्ध कार्यक्रम, कुटीर एवं ग्रामीण उद्योग, सहकारी समितियों, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य, गृह-निर्माण, प्रशिक्षण एवं समाज कल्याण, युवा एवं महिला कार्यक्रमों का समावेश किया गया था ।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) में लघु एवं सीमान्त कृषक अभिकरण तथा कृषि श्रमिक परियोजनाओं को शुरू किया गया । इन कार्यक्रमों का उद्देश्य निर्धन एवं निर्बल वर्ग की आर्थिक स्थिति में सुधार करना था । पांचवी पंचवर्षीय योजना में अनेक कार्यक्रम रखे गए । इसे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) का नाम दिया गया । आज अनेक कार्यक्रम इसके अंतर्गत चलाये जा रहे हैं जैसे सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.), काम के बदले अनाज, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसेम), ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.इ.जी.पी.), मरुभूमि विकास कार्यक्रम (डी.डी.पी.), जवाहर रोजगार योजना, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम आदि ।

इन विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के पश्चात भी गांवों में भयंकर गरीबी है, बेरोजगारी है, भुखमरी है, असंतोष है, शोषण है, और शहरों की ओर ग्रामीण जनसंख्या का पलायन है । विभिन्न कार्यक्रमों से महंगाई, भ्रष्टाचार, अकुशलता, मध्यस्थों का बोलबाला, कामचोरी, भाई-भतीजावाद आदि बुराइयां उत्पन्न हुई हैं । बेरोजगारों की संख्या विकास की योजनाओं के साथ-साथ बढ़ी है । सात पंचवर्षीय योजनाओं तथा तीन वार्षिक योजना पूरी होने के बावजूद बेरोजगारी में निरन्तर वृद्धि हुई है । 1961 में कुल बेरोजगारी 18.3 लाख थी जो 1991 में बढ़कर 219.5 लाख हो गई है अर्थात तीन दशक में इसमें लगभग 12 गुना वृद्धि हुई है । इसी अवधि में शिक्षित बेरोजगारी भी 5.9 लाख से बढ़कर 111.6 लाख हो गई है ।

इन विभिन्न विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की समीक्षा करने पर कमियां परिलक्षित होती हैं जैसे - लाभान्वित इकाइयों का गलत चयन, ऋण एवं अनुदान का अनुत्पादक कार्यों में उपयोग घूस एवं रिश्वतखोरी, ऋण की अपर्याप्त मात्रा, ऋण पश्चात निरन्तर पर्यवेक्षण का अभाव, आंकड़ों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति पर अधिक जोर, स्थायी परिसम्पत्तियों के सृजन का अभाव आदि ।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वयन न होने तथा इनमें पाये जाने वाले भ्रष्टाचार के बारे में भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने भी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा था कि इन कार्यक्रमों के कुल मूल्य का केवल 15 प्रतिशत भाग ही वास्तविक लाभार्थियों तक पहुंच पाता है और शेष राशि लालफीताशाही के कारण बर्बाद हो जाती है ।

ग्रामीण विकास कार्यक्रम अपने आप में अच्छे कार्यक्रम हैं लेकिन इन्हें प्रभावी रूप से क्रियान्वित करना आज के समय की पुकार है जिससे कि सही व्यक्तियों को सही समय पर पर्याप्त वित्तीय सहायता मिले । इससे वे अपने पांवों पर खड़े हो सकेंगे । ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू

करने के लिए सरकार द्वारा निम्न कदम उठाने आवश्यक हैं :—

1. खंडस्तरीय नियोजन

हमारे देश में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से संबन्धित नियोजन केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा तैयार करके लागू कर दिया जाता है । इनमें खंडस्तरीय नियोजन का नितान्त अभाव पाया जाता है । प्रत्येक कार्यक्रम खंडस्तर पर स्थानीय लोगों (सरकारी अधिकारी, जन प्रतिनिधि आदि) के आपसी विचार-विमर्श के पश्चात तैयार करके लागू किया जाये तो इससे प्रभावी लाभ प्राप्त होंगे । जन सहयोग भी प्राप्त होगा । पंचायत समिति स्तर पर एक खंड में आने वाली पंचायतों के माध्यम से कार्यक्रम तैयार करने तथा लागू करने में आसानी रहेगी ।

2. गहन सर्वेक्षण

किसी भी कार्यक्रम या योजना को तैयार करने तथा लागू करने से पूर्व स्थानीय संसाधनों के एक गहन सर्वेक्षण से भौतिक वित्तीय मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता तथा संभावनाओं का आसानी से पता लगाया जा सकता है । इन संसाधनों के आधार पर ही कार्यक्रम तैयार किये जाने चाहिए जिससे स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक उत्पादन क्रियाओं को सरलता एवं कुशलता से शुरू किया जा सकेगा । इससे कार्यक्रम तैयार करने तथा इनका प्रभावी रूप से क्रियान्वयन करने में भी आसानी रहेगी ।

3. ग्रामीण पृष्ठभूमि के अधिकारियों का चयन

ग्रामीण विकास योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु ऐसे अधिकारियों की आवश्यकता है जो गांव के वातावरण, सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों से भलीभांति परिचित हों । मानव वातावरण की उपज है और उसका विकास भी वातावरण पर निर्भर करता है । भारतीय प्रशासनिक सेवा में शहरी एवं ग्रामीण वर्ग के अधिकारियों को अलग किया जा सकता है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसे अधिकारियों को लगाया जाना चाहिए जो गांवों से लगाव रखते हों, वहाँ की भाषा, रीति-रिवाज जानते हैं और इससे ग्रामीण लोगों को अभिप्रेषित करके ऐसे कार्यक्रमों को प्रभावी रूप से लागू कर सकते हों ।

4. समयबद्ध लक्ष्यों का निर्धारण

जो भी ग्रामीण विकास कार्यक्रम अपनाये जायें उनके समयबद्ध लक्ष्यों का निर्धारण किया जाना आवश्यक है जिससे कि एक दी हुई अवधि में इन लक्ष्यों की पूर्ति की जा सके । इसके लिए प्रत्येक स्तर पर (ग्राम, खंड, जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर) लक्ष्यों के निर्धारण हेतु एक तंत्र स्थापित किया जाना चाहिए । समय का पालन भी आवश्यक है । इससे निश्चित समयवधि में लक्ष्यों की प्राप्ति को प्रभावी बनाया जा सकेगा ।

5. लाभान्वित परिवारों का सही चयन

ग्रामीण विकास योजनाओं से लाभान्वित होने वाले परिवारों का सही चयन किया जाना आवश्यक है जिससे कि वास्तव में जिन्हें मदद मिलनी चाहिए उन्हें ही मदद मिले । इसके लिए प्रशासनिक तंत्र को सजग एवं जवाबदेह बनाना होगा । ग्राम स्तर पर पटवारी तथा ग्रामसेवक को सही चयन हेतु नियमों का कठोरता से पालन करना चाहिए और यदि वे सही इकाई का चयन नहीं करवा पाते हैं तो उनके वेतन वृद्धि, पदोन्नति आदि में विपरीत प्रविष्टि करने का प्रावधान किये जायें । जन-प्रतिनिधियों को भी ऐसे चयन में जवाबदेही होना होगा । यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो उन्हें उनके पद से मुक्त करने का भी प्रावधान किया जाना चाहिए । अतः जवाबदेही का कड़ाई से पालन करने पर ही सही चयन होगा तथा भ्रष्टाचार को बढ़ावा नहीं मिलेगा ।

6. पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की पूर्ति

हमारे ग्रामीण विकास कार्यक्रम प्रभावी रूप से लागू इसलिए भी नहीं हुए क्योंकि इनकी संख्या अधिक है तथा इन पर व्यय करने हेतु संसाधन कम पड़ते हैं । ऐसे कार्यक्रम लागू करते समय हमें इनकी संख्या को साधनों के अनुसार ही रखना चाहिए । पर्याप्त संसाधन होने पर सम्बन्धित कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सकेगा । केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों में संसाधनों की पूर्ति के लिए आपसी तालमेल एवं सहयोग होना आवश्यक है और कार्यक्रमों को राष्ट्रीय स्तर पर पूर्ण विचार-विमर्श के पश्चात ही लागू किया जाना चाहिए । ये राजनीतिक आधार की बजाय सामाजिक आर्थिक आधार पर लागू किये जाने चाहिए । इन कार्यक्रमों से रोजगार, उत्पादकता तथा सामाजिक परिसम्पत्तियों के सृजन की संभावनाओं का पूरा अध्ययन करके ही लागू किया जाना चाहिए ।

7. निरन्तर निरीक्षण एवं प्रगति का जायजा

ग्रामीण विकास योजनाओं को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए निरीक्षण तंत्र को निरन्तर निगरानी रखनी होगी तथा समय-समय पर ऐसे कार्यक्रमों की प्रगति का लेखा जोखा रखना होगा । इससे एक ओर क्रियान्वयन तंत्र सजग रहेगा तथा

दूसरी ओर इन कार्यक्रमों में पनपने वाले भ्रष्टाचार, शिथिलता तथा बाधाओं को रोका जा सकेगा । इस कार्य हेतु एक स्थायी व्यवस्था की जानी चाहिए ।

8. शिक्षण एवं अनुसंधान संस्थाओं का सहयोग

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से कितना लाभ हुआ है तथा सामाजिक आर्थिक-परिवर्तनों में ये कितने सहायक हुए । इसकी जानकारी प्राप्त करने हेतु ऐसे कार्यक्रमों पर विभिन्न शिक्षण एवं अनुसंधान संस्थाओं में कार्यरत अनुसंधानकर्ताओं की सहायता से अनुसंधान करवाये जाने चाहिए । विश्वविद्यालयों में इन कार्यक्रमों पर भी अनुसंधान किए जाने चाहिए । इससे समय एवं संसाधन दोनों का अधिकतम उपयोग किया जा सकेगा । इससे इन कार्यक्रमों की वास्तविक स्थिति का भी पता लगाया जा सकेगा ।

9. स्थायी परिसम्पत्तियों का सृजन

ग्रामीण विकास परियोजनाओं का प्रमुख उद्देश्य यह होना चाहिए कि इससे स्थायी सामाजिक परिसम्पत्तियों का सृजन हो सके । इससे दोहरा लाभ होगा । एक ओर समाज में इन परिसम्पत्तियों का सृजन होगा जैसे स्कूल भवन, चिकित्सालय भवन, तालाब, सड़क, एवं कुओं का निर्माण तथा दूसरी ओर इन कार्यक्रमों से जुड़े परिवार आत्म-निर्भरता को प्राप्त होंगे, उन्हें सरकारी अनुदान तथा सहायता की आवश्यकता महसूस नहीं होगी । इस पहलू के लिए हमें लाभान्वित परिवारों को उनके साधनों एवं कार्यों पर नजर रखकर रोजगारोन्मुखी गतिविधियों का आवंटन करना होगा ।

10. अनुदान एवं ऋण को उत्पादकता से जोड़ना

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत चयनित परिवारों को ऋण तथा अनुदान की राशि उपलब्ध करायी जाती है । अनुदान वापिस चुकाया नहीं जाता है जबकि ऋण वापिस चुकाया जाता है । इससे चयनित परिवारों से यह भावना घर कर जाती है कि अनुदान की राशि मुफ्त दी गई है तो वे इसका दुरुपयोग करने लगते हैं । अनुत्पादक कार्यों पर खर्च कर देते हैं । ऐसी स्थिति में ऋण एवं अनुदान को उत्पादकता से जोड़ा जाना आवश्यक है । उत्पादन बढ़ाने पर ही अनुदान की राशि माफ की जानी चाहिए । इससे प्रत्येक परिवार उत्पादक कार्यों पर इस राशि का उपयोग करेगा और धीरे-धीरे अपने पांवों पर खड़ा हो सकेगा । इसके लिए ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ प्रशासन तंत्र आवश्यक है जो निरन्तर निरीक्षण का कार्य करे ।

11. उत्पादन हेतु पर्याप्त वित्त एवं विपणन सुविधायें

ग्रामीण विकास परियोजनायें रोजगार तथा उत्पादन में वृद्धि करने वाली होती हैं । उत्पादन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जिसके लिए पर्याप्त वित्त की आवश्यकता पड़ती है तथा उत्पादित वस्तु के विपणन हेतु भी वित्तीय साधनों की आवश्यकता पड़ती है लेकिन अधिकांश ग्रामीण विकास कार्यक्रम अपर्याप्त वित्तीय साधनों तथा विपणन सुविधाओं के अभाव में असफल हो जाते हैं । अतः इनके रोजगार एवं उत्पादन सम्बन्धी लक्ष्यों को पूरा नहीं किया जा सकता है । इसलिये राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा पर्याप्त वित्तीय तथा विपणन सुविधाओं की पूर्ति करनी चाहिए ।

12. जनसहयोग

हमारे देश में सात पंचवर्षीय एवं तीन वार्षिक योजनायें पूरी हो चुकी हैं । इन योजनाओं की असफलता में एक मूलभूत कारण जन चेतना एवं जन सहयोग का अभाव रहा है । जनता का लगाव विभिन्न विकास कार्यक्रमों में कम रहा है और सरकारी कार्यक्रम लागू करने से पूर्व आवश्यक वातावरण एवं जन चेतना, शिक्षा प्रसार एवं संचार माध्यमों के माध्यम से उत्पन्न की जाये जिससे विभिन्न कार्यक्रमों में जनता की भागीदारी हो, जनता इन कार्यक्रमों को अपने लिए समझे तथा सरकार को पूर्ण सहयोग दे सके । इसके लिए जनता की प्रत्यक्ष साझेदारी हरेक क्षेत्र पर सुनिश्चित की जाये । ऐसा करने पर जनता में इन कार्यक्रमों के प्रति आस्था, लगाव, रूचि एवं प्रेरणा उत्पन्न हो सकेगी और इन्हें प्रभावी ढंग से क्रियान्वित किया जा सकेगा ।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में यह कहना पर्याप्त होगा कि विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को तैयार करने से पूर्व ही उचित सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक एवं मनोवैज्ञानिक वातावरण तैयार करना अति आवश्यक है । सभी स्तरों पर दृढ़ इच्छा शक्ति एवं इन कार्यक्रमों से प्राप्त उद्देश्यों को नजर में रखते हुए ईमानदारी से लागू करने पर देश में सर्वांगीण विकास संभव हो सकेगा । इसके साथ ही राष्ट्रपिता बापू के सपनों को साकार करने में सफलता प्राप्त हो सकेगी ।

1347, जयपथ, बरकत नगर,
जयपुर-303015 (राजस्थान)

गांवों का विकास-ग्रामीण उद्योगों पर निर्भर है

रफीक शास्त्री

जब से नयी आर्थिक और औद्योगिक नीति की घोषणा हुई है, ऐसी धारणा बनने लगी है कि देश की समृद्धि और विकास का दारोमदार उद्योग और व्यापार के विकास पर ही निर्भर है। अर्थव्यवस्था के विकास का यह आधार मान लिया गया है कि देश में उद्योगों का तेजी से विकास हो, दुनिया के बाजार में भारत अपना माल बेचने के काबिल बन सके और यहीं यह बुनियादी सवाल पैदा होता है कि क्या उद्योग और व्यापार को तरक्की देकर देश का सम्पूर्ण और समग्र विकास संभव है या आज की स्थिति में देश की असली खुशहाली का दारोमदार कृषि के विकास और ग्रामीण क्षेत्रों की समृद्धि के विशेष उपाय लाने पर ही निर्भर है। नयी औद्योगिक और आर्थिक नीति ने आज ग्रामीण और कुटीर उद्योगों के सामने एक चुनौती खड़ी कर दी है। ग्रामीणों के मन ऐसी शंकाएं पैदा होने लगी हैं कि क्या हमारे छोटे-छोटे ग्रामीण उद्योग और परम्परागत दस्तकारियां लाइसेंस और नियंत्रण से उद्योगों के विस्तार और विकास की प्रतिस्पर्धा को झेल सकेंगे ? हमारे ग्रामीण और कुटीर उद्योगों के सामने खतरा मंडराता नजर आ रहा है उससे उभरने के लिए क्या हमारी छोटी-छोटी दस्तकारियों को एक बार फिर महात्मा गांधी जैसी महान हस्ती के प्रति इंतजार करना होगा जो संगठित उद्योगों के अनियंत्रित विकास में उनकी रक्षा कर सके। अगर किसी महान हस्ती का उदय हो तो देश और काल की अंतर्निहित शक्ति उस पर निर्भर करती है। तो फिर एक सीधी सी बात यह भी है कि क्या ग्रामीण क्षेत्रों में सक्रिय कार्यकर्ता इस चुनौती का सामना करने में अपनी छोटी-बड़ी भूमिका का निर्वाह किस रूप में कर सकते हैं ?

नयी आर्थिक नीति

सरकार ने जो बजट पेश किया है तथा औद्योगिक और वित्तीय आय में सुधार के जो उपाय किये हैं उसमें देश का हित ही झलकता है। ये विदेश व्यापार के भुगतान संतुलन की विषय स्थिति से निपटने के लिए भी कारगर साबित होंगे। इस बात को ध्यान में रखकर उद्योग और व्यापार नीति में ऐसे परिवर्तनों का प्रावधान किया गया है, जिससे कि उद्योग और व्यापार को अनावश्यक नियंत्रण के शिंकजों से मुक्त कर के प्रतिस्पर्धा के आधार पर उत्पादकता को बढ़ावा दिया जाए। इसके लिए उद्योग और व्यापार के संस्थागत ढांचे में आमूल परिवर्तन का प्रावधान किया गया है। इससे उद्योग और व्यापार के विकास की ऐसी कल्पना की गयी है कि ये क्षेत्र लाइसेंस और नियंत्रण के बन्धनों से मुक्त होकर बाजारी अर्थ-व्यवस्था के दबाव से बचें और विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ अपना सामंजस्य स्थापित कर सकें।

नयी औद्योगिक नीति में कुछ विशिष्ट समूहों के नये कर, सभी उद्योगों के लिए लाइसेंसिंग प्रणाली समाप्त कर दी गई है। निजी कंपनियों को उन अर्थों में पदार्पण की अनुमति दे दी गयी है जो अभी तक सार्वजनिक उपक्रमों के लिए आरक्षित माने जाते रहे हैं। इनके अलावा 51 प्रतिशत तक विदेशी हिस्सा पूंजी निवेश की उन्मुक्त अनुमति भी दे दी गई है।

विदेशी पूंजी निवेश

इस नयी नीति में उद्योग और व्यापार जगत में विदेशी पूंजी निवेश को अत्याधिक आकर्षित करने का विशेष प्रयास किया गया है। ऐसा करना इसलिए जरूरी समझा गया क्योंकि देश पर पहले से ही विदेशी ऋण का काफी भार है। विदेशी ऋण के दबाव का देश की अर्थव्यवस्था पर पहले से ही काफी असर है। भारी विदेशी ऋण की अदायगी के दबाव के कारण देश की आर्थिक स्थिति में विकास के जो लक्ष्य पैदा हो रहे हैं तथा विदेश व्यापार के भुगतान संतुलन में जो बाधाएं आ रही हैं, उन्हें हर बात के उपाय के रूप में ही विदेशी पूंजी निवेश को आकर्षित करने पर बल दिया गया है। इसके पीछे यह कारण है कि अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए यदि उद्योग और विदेश व्यापार में विदेशी ऋण लिया जाये तो देश पर ऋण का बोझ बढ़ता जायेगा। इसकी तुलना में यदि विदेशों से उद्योग और व्यापार में विदेशी पूंजी का हिस्सेदारी के रूप में सीधे निवेश हो तो उक्त ऋण का बोझ नहीं बढ़ेगा। इससे एक फायदा यह भी रहेगा कि विदेशी पूंजी निवेश के साथ आधुनिक तकनीक भी आसानी से सुलभ हो सकेगी। विदेशी पूंजी और आधुनिक

तकनीक के सहारे हमारे उद्योग तेजी से तरक्की कर सकेंगे और मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था के दबाव में हमारा सारा व्यापार और उद्योग जाति प्रताड़ित बाजार की प्रतिस्पर्धा में फल सकेगी ।

विदेशी पूंजी निवेश के साथ देश से बहुत सी आशाएं बांधी गयी हैं । हाल में विश्व की घटनाओं ने जो करवट ली है, उससे कई तरह की आशकाएं भी भ्रम जाल से भरी हैं । उसमें भारत की स्थिति में परिवर्तन आयेगा । ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि पश्चिमी देशों का सुझाव पूंजी निवेश के सिलसिले में अब एशियाई देशों से ज्यादा पूर्व यूरोप के देशों की ओर हो जायेगा और शायद भारत में पश्चिमी देशों की ओर से उस मात्रा में पूंजी निवेश नहीं हो सके, जितनी कि हमने उम्मीद लगा रखी थीं । अभी तो यह देखना है कि उद्योग और व्यापार से देश के समग्र विकास की जो अपेक्षाएं की जा रही हैं, वे कितनी पूरी हो सकेंगी । मूल्यों में स्थिरता लाने की जो कल्पना की गयी थी, वो दूर-दूर तक पूरी होती नहीं दिखाई देती । उर्वरकों के मूल्यों में वृद्धि, देश के ज्यादातर भागों में वर्षा के विलम्ब से होने और बिजली की कमी के कारण कृषि जगत की कठिनाइयां बढ़ी हैं । ये ऐसी कठिनाइयां है जो केवल आगामी फसल से अनाज के ज्यादा समर्थन मूल्य देने की घोषणा से दूर नहीं हो सकेंगी । फिर ग्रामीण उद्योगों तथा परम्परागत दस्तकारियों को अनियंत्रित औद्योगिक विकास की चुनौती से सामना है । यहां एक बात यह भी नहीं भूलनी चाहिए कि नयी नीति में यह कल्पना स्पष्ट है कि प्रारम्भ में कठिनाई का एक दौर चलेगा, मगर हमारी अर्थव्यवस्था जल्दी ही उससे उठकर स्थिर आधार पर विकसित होगी । ये कल्पनाएं कहां तक पूरी होगी, कठिनाई के दौर से कब तक निपटा जा सकेगा । इन कठिनाइयों को पार करने के बाद भी क्या होगा । उद्योग और व्यापार जगत में फैलने वाली जगमगाहट की कितनी रोशनी गांवों तक पहुंचेगी । यह बुनियादी सवाल है । ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से जुड़े लोगों के मन में यह सवाल उठना बिल्कुल स्वाभाविक हैं । मन में पैदा होने वाले इन सवालों से ये आशंकाएं भी सिर उठाती हैं कि नयी रोशनी की तलाश में कहीं हमारे ग्रामीण उद्योग और परम्परागत दस्तकारियां ज्यादा अन्धेरे में गुम न हो जायें ।

ग्रामीण कार्यकर्ता

यही वह चुनौती है जिनका ग्रामीण विकास में लगे कार्यकर्ताओं को विशेष रूप से सामना करना है । हरित क्रांति एक बार ग्रामीण क्षेत्रों का कायाकल्प कर चुकी है । ग्रामीण क्षेत्रों की उन्नति और विकास के लिए अब दूसरी हरित क्रांति की जरूरत महसूस की जा रही है । हमारे योजनाकारों ने दूसरी हरित क्रांति की जो रूपरेखा तैयार की है उसमें कृषि उत्पादों पर आधारित छोटे-छोटे उद्योगों का विकास करने पर विशेष जोर दिया गया है । नये बजट प्रस्ताव में इस प्रकार के उद्योगों को कई प्रकार की छूट देने की भी घोषणा की गई है । इन उद्योगों के फलने-फूलने के रास्ते में पड़ने वाली बाधाओं को दूर करना ग्रामीण कार्यकर्ताओं की एक बड़ी जिम्मेदारी हो सकती है ।

पहली हरित क्रांति में विस्तार कार्यकर्ताओं ने प्रयोगशालाओं में हुई वैज्ञानिक खोजों की जानकारी इस देश के अनपढ़ किसानों के सामने पेश करके, इसे अपनाने के लिए उन्हें प्रेरित करने में विशेष भूमिका निभाई थी । ग्रामीण और कुटीर उद्योगों के विकास में बिजली की बहुत बड़ी बाधा है । ग्रामीण क्षेत्रों में सक्रिय कार्यकर्ता इस ओर विशेष ध्यान दे तो यह बाधा दूर हो सकती है । ग्रामीण स्तर पर गोबर और कचरों से गैस तैयार करने की परियोजना पर अपेक्षित कार्य नहीं हुआ है । यदि इस ओर पूरा ध्यान दिया जाये और सामुदायिक गोबर गैस संयंत्र चलाए जायें तो ग्रामीण स्तर पर ऊर्जा के प्रभाव की समस्या से निपटा जा सकता है । ग्रामीण स्तर पर पशुधन के विकास कार्यक्रमों में भी उसे व्यवस्थित किया जा सकता है ।

ग्रामीण उद्योगों को बड़े उद्योगों की प्रतिस्पर्धा से बचाने में गोबर गैस परियोजना विशेष रूप से सहायक हो सकती है । इसके लिए समुदाय को प्रेरित करना और संगठित करना एक मुश्किल कार्य है । आज दुनिया में जो देश जितना खुशहाल है वहां रोशनी की उतनी ही चमक है । एक बार यह चमक पैदा हो जाये तो रोशनी अपने आप फैलती है और उन्नति, विकास का रास्ता अपने आप तय होता रहता है ।

जिस देश में पूंजी की कमी, हाथ पांव की मेहनत करने वालों की और जीवन की बुनियादी जरूरतें पूरी करने वाले पड़े हों वहाँ की आर्थिक हालत में सुधार छोटे-छोटे ग्रामीण उद्योग ही कर सकते हैं । ऐसे उद्योग धन्धों के विकास से ही गांवों से शहरों को पलायन की स्थिति रूक सकेगी । इससे शहर भी ज्यादा साफ सुथरे हो सकेंगे । शहरों और उद्योगों के विकास के साथ गांवों का विकास भी जरूरी है ।

8 बी जोगाबाई
जामिया नगर
नई दिल्ली 110025

ग्रामीण विकास में बाधायें

डॉ० पुष्पेश पाण्डे

भारत गाँव में बसा है, जहाँ लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। अतः गांव की उन्नति होने से समूचे राष्ट्र का विकास सम्भव हो सकेगा। ऐतिहासिक सन्दर्भ में गाँव मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति के जनक रहे हैं परन्तु गाँव में न उतनी सम्पन्नता है, न उतनी नागरीय सुविधायें हैं जितनी नगरों में हैं। आज आजादी के 44 वर्षों के बाद भी ग्रामीण जनता को उसकी मूलभूत आवश्यकताएं भी नहीं मिल पाई हैं, बड़ा विचित्र सा लगता है कि जो क्षेत्र इतने विशाल देश का प्रतिनिधित्व करता है, विभिन्न प्रकार से आर्थिक विकास में योगदान देता है, उसे स्वयं की आवश्यकता पूर्ति में कठिनाई आती है, इसके मूल में यदि देखा जाये तो स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक ऐसी समस्याएं हैं, जो न केवल ग्रामीण विकास अपितु सम्पूर्ण देश के विकास में बाधा उत्पन्न कर रही हैं। ग्रामीण विकास का मतलब है शिक्षा, चिकित्सा, पेयजल, बिजली, लघु और कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग, प्रौढ़ शिक्षा, वृक्षारोपण पर्यावरण आदि सभी क्षेत्रों में गाँवों में जरूरी सुविधाएं उपलब्ध हों और गाँव आत्मनिर्भर बनें। समय-समय पर सरकार ने विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से इस दिशा में प्रयास किये हैं, किन्तु यह सहायता कार्यक्रम अपेक्षित लाभ नहीं दे सके हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण विकास हेतु जो सहायता दी जाती है वह उचित हो तथा लाभ उस प्रत्येक व्यक्ति को पहुँचना चाहिए जिसके लिए ऐसी सहायता उपलब्ध कराई गई हो। ऐसा करने पर ही समस्त अर्थव्यवस्था का विकास सम्भव है क्योंकि गाँव अर्थव्यवस्था रूपी महल की नींव की ईंट हैं।

ग्रामीण विकास के प्रयास

आजादी के बाद भारत सरकार ने ग्रामीण विकास की दिशा में कई उल्लेखनीय कदम उठाये हैं और अपनी विभिन्न योजनाओं में ग्राम्य विकास पर ध्यान दिया है। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए सरकार ने कई योजनाएं क्रियान्वित की हैं जैसे सामुदायिक विकास कार्यक्रम (सी.डी.पी.) 1952, राष्ट्रीय विस्तार सेवा (एन.ई.एस.) 1953, खादी एवं ग्रामोद्योग कार्यक्रम 1957, ग्रामीण आवासीय परियोजना 1957, बहुउद्देश्यीय अनु. जाति/जनजाति विकास खण्ड कार्यक्रम 1957, पैकेज कार्यक्रम 1960, गहन जिला कृषि कार्यक्रम 1960, व्यावहारिक आहार कार्यक्रम 1962, ग्रामीण उद्योग परियोजना 1962, गहन कृषि विकास कार्यक्रम (आई.ए.डी.पी.) 1964, उच्च उत्पादकता वाली किस्मों का कार्यक्रम 1966, जनजाति विकास खण्ड 1966, ग्रामीण कार्यक्रम 1967, ग्रामीण-जनशक्ति कार्यक्रम 1969, सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.) 1970, ग्रामीण रोजगार हेतु नगर योजना 1971, लघु कृषक विकास-एजेन्सी (एस.एफ.डी.ए.) 1971, पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम 1972, जनजाति क्षेत्र विकास कार्यक्रम, 1972, जनजाति विकास हेतु पाइलट योजना 1972, समेकित बाल विकास सेवायें 1972, न्यूनतम आवश्यक कार्यक्रम 1972, पेयजल योजना 1972, कमाण्ड-एरिया विकास कार्यक्रम (सी.ए.डी.पी.) 1975, काम के बदले अनाज कार्यक्रम 1977, मरुभूमि विकास कार्यक्रम 1977, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) 1980, ट्राइसेम 1980, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम 1980, नया बीस सूत्रीय कार्यक्रम 1980, ग्रामीण क्षेत्र में महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम 1982, राष्ट्रीय बायोगैस विकास परियोजना 1982, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी-कार्यक्रम 1983, इन्दिरा आवास योजना 1985, ग्रामीण आवास ऋण योजना, निर्बल वर्ग ग्रामीण आवासीय योजना 1988, जवाहर रोजगार योजना 1989, के साथ ही साथ अन्य तमाम योजनायें जैसे परिवार कल्याण, युवा कल्याण, हरिजन एवं समाज कल्याण, स्पेशल कम्पोनेन्ट स्कीम, मत्स्य पालन, निजी लघु सिंचाई, उद्यान, कुटीर अग्नि एवं सामूहिक बीमा योजना, पशु पालन लघु/सीमान्त कृषकों को बोरिंग की सहायता योजना, सामाजिक-सुरक्षा कोष, सूखोन्मुख क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम, आबादी पर्यावरण सुधार, महिला कल्याण पोषण कार्यक्रम, पोषाहार कार्यक्रम, धुआँ रहित विकसित चूल्हा परियोजना, जनधारा एवं कुटीर ज्योति आदि अनेक कदम शासन ने उठाये हैं जो निस्संदेह भारत की ग्रामीण जनता की निर्धनता व बेरोजगारी को दूर करने के लिए पर्याप्त थे लेकिन इसे अपना दुर्भाग्य ही समझना होगा कि

भारतीय गांवों की हालत आज भी ज्यों कि त्यों बनी हुई है । आज भी अधिकांश गांवों में सड़क, बिजली, व पानी जैसी मूलभूत समस्याओं का कोई हल नहीं निकाला जा सका है । वैज्ञानिक तकनीकी एवं औद्योगिक समृद्धि का समुचित लाभ अभी तक समस्त ग्रामवासियों को नहीं मिल पाया है । इन सारी योजनाओं का पूरा लाभ ग्रामवासियों के स्थान पर बिचौलियों, सरकारी अधिकारियों, और कर्मचारियों की जेब में चला जा रहा है । आज भी गरीबी रेखा से नीचे जीवन बिता रहे लोगों की संख्या गांव में 40% से अधिक है । आज ग्रामीण-विकास को लेकर अनेक प्रश्न उठ खड़े होते हैं—

(i) क्या ग्रामीण-जनता की निर्धनता दूर हो चुकी है ?

(ii) क्या प्रत्येक ग्रामीण को रोजगार प्राप्त है ?

(iii) क्या उत्पादन बढ़ाया जा चुका है ?

(iv) क्या प्रत्येक ग्रामीण को उचित स्वास्थ्य सुविधायें उपलब्ध हैं ?

(v) क्या प्रत्येक व्यक्ति को उचित शिक्षा प्राप्त है ?

(vi) क्या गांवों में सड़क, बिजली व पेयजल जैसी समस्याओं का हल निकाला जा चुका है ?

उपरोक्त प्रश्न कुछ इस तरह के हैं जो विकास कार्यक्रमों की सफलता पर प्रश्न चिन्ह लगा देते हैं । देखा जाय तो इन ग्रामीण विकास के सहायता कार्यक्रमों में क्या और किस प्रकार की, कैसे और किसकी सहायता की जाय, इसका ध्यान नहीं रखा गया, यही कारण है कि आज भी अर्थव्यवस्था की मुख्य धुरी (गाँव) की समस्या ज्यों की त्यों ही बनी हुई है और विकास में बाधा उत्पन्न हो रही है ।

ग्रामीण विकास में बाधायें

आज भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था कई प्रकार की समस्याओं से जूझ रही है जिनमें शिक्षा, यातायात व संचार, जल, विद्युत, स्वास्थ्य आदि प्रमुख समस्यायें हैं जिनके रहते चहुँमुखी ग्राम्य विकास की कल्पना करना सार्थक नहीं हो सकता है । आइये इन समस्याओं/बाधाओं को संक्षेप में देखा जाय ।

(1) ग्रामीण विकास की बाधाओं में मुख्य बाधा शिक्षा की रही है । 'शिक्षा' आर्थिक विकास का अपरिहार्य अंग है, यह आर्थिक विकास के लिये आवश्यक और सहायक साधन है । क्षिक्षाा के फलस्वरूप सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन होते हैं जो आर्थिक विकास के जनक बनते हैं । शिक्षा के माध्यम से ही आधुनिकीकरण के लिए वांछित परिवर्तनों को लाया जा सकता है क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से किसी भी सन्देश को जन-सामान्य तक पहुँचाया जा सकता है किन्तु आज भारतीय गाँवों में अधिकांश लोग निरक्षर हैं । ऐसे में विकास कार्यक्रमों के लाभों का ज्ञान ग्रामीण जन को नहीं हो पाता है । विकास सम्बन्धी विभिन्न वैज्ञानिक जानकारियों को व्यवहार में न ला पाने से निश्चय ही विकास कार्यक्रम अपनी अपेक्षित गति से लक्ष्यों तक नहीं पहुँच पाये हैं । इतना ही नहीं अशिक्षा के कारण ही ग्रामीण समुदाय का विभिन्न स्तरों पर शोषण होता रहा है । वास्तव में अशिक्षा ग्राम्य विकास प्रक्रिया में एक बड़ी बाधा बनी हुई है ।

(2) ग्रामीण विकास प्रक्रिया में दूसरा महत्वपूर्ण बाधक तत्व, बिना इन समस्याओं को व्यापक स्तर पर समझे हुये, गाँवों से दूर बैठकर योजनाओं का निर्माण करना है । नीति-नियामक बिना किसी अनुभव के मात्र आंकड़ों के आधार पर योजनायें बना देते हैं, जो वास्तविक समस्या के हल के लिये सैद्धान्तिक रूप में तो पूर्ण होती हैं लेकिन व्यावहारिक रूप में उनको क्रियान्वित करना असंभव सा लगता है ।

(3) ग्रामीण विकास की समस्या का एक पहलू यह है कि जो हमारे प्रतिनिधि ग्रामीण अंचलों से चुनकर आते हैं वह भी शहरों में ही रहने लगते हैं । वे ग्रामीण विकास की कठिनाइयों में अधिक ध्यान नहीं देते हैं ।

(4) ग्रामीणों की क्रय शक्ति बहुत कम है, कारण कि गांवों में अर्द्धबेरोजगारी, छिपी बेरोजगारी आदि का इतना अधिक बोल-बाला है कि साल के अधिकांश समय तक व्यक्ति खाली बैठा रहता है जिसका प्रभाव उसकी आय, कार्य क्षमता व स्वास्थ्य पर पड़ता है, फलस्वरूप एक गरीब किसान गरीब ही बना रहता है ।

(5) ग्रामीण विकास से सम्बन्धित योजनाओं को लागू करने में एक ओर तो अधिकारियों में उत्साहहीनता का भाव रहता है तथा विभागों में तालमेल नहीं होता, वहीं दूसरी ओर राजनैतिक हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप योजनायें ठीक ढंग से लागू नहीं हो पातीं, इतना ही नहीं अनेक बार ग्रामीणों को विशेष योजनाओं के लाभों, इन योजनाओं तक पहुँचने की जानकारी न होने से बिचौलिये इन लाभों का काफी हिस्सा डकार जाते हैं । इस तरह ग्रामीण विकास हेतु जो भी योजनायें सरकार द्वारा चलाई जाती हैं और जितना धन विभिन्न योजनाओं हेतु स्वीकृत किया जाता है उसका आधा भाग भी ग्रामीणों तक नहीं पहुँच पाता है ।

(6) ग्रामीण विकास के पिछड़ेपन का एक कारण रहा है ग्रामीण क्षेत्रों का औद्योगिकरण से दूर रहना। आज गाँवों में उद्योग-धन्धों का अभाव है जबकि लघु एवं कुटीर उद्योग-धन्धों की संभावनाएं मौजूद हैं। ग्रामवासी कुटीर उद्योग एवं लघु उद्योग खोलने से हिचकते हैं। उनको यह डर बना रहता है कि कहीं उनकी पूंजी फंस न जाए। यानी उनमें साहस का घोर अभाव पाया जाता है। यही कारण है कि ग्रामीण लोग मुख्यतया कृषि पर ही आधारित हैं। उद्योगों को सहायक कार्य के रूप में नहीं अपनाया गया है।

(7) ग्रामीण जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि के कारण विकास के सारे प्रयास उसके सामने नतमस्तक हो गये। सन् 1951 से 1987 तक परिवार नियोजन कार्यक्रम में लगभग 3500 करोड़ रुपये लगाए जाने का अनुमान है।

(8) ग्रामीण विकास में एक बाधा यह भी है कि आज भी लोग विभिन्न प्रकार की परम्परागत रुढ़ियों व अंधविश्वासों के साथ जी रहे हैं, अनावश्यक रूप से भारी धन राशि ऐसे कार्यों पर व्यय कर दी जाती है जिनका वास्तव में कोई औचित्य नहीं है।

(9) भारत के अधिकांश गाँवों में आज भी स्वास्थ्य सुविधा, बैंकिंग, यातायात व संचार, बाजार-मण्डी, भंडार-गृह आदि जैसी आधारभूत सुविधाओं का अभाव है। इनके सबके होते हुए विकास नहीं हो सकता।

(10) ग्रामीण ऋण ग्रस्तता, विकास की बाधाओं में मुख्य बाधा रही है। ऋणग्रस्तता के चलते किसान साधन विहीन हो जाता है। फलस्वरूप उसे उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, समय पर सिचाई आदि कर पाना सम्भव नहीं होता, जिसके चलते उत्पादकता प्रभावित होती है। ऋण से दबा किसान उत्पादकता में सुधार नहीं कर सकता।

(11) हमारी आर्थिक संरचना इस प्रकार की बन गई है कि इसमें निहित भ्रष्टाचार और अन्य कारण साधनों को धनी वर्ग की ओर खींच ले जाते हैं। हम कोई भी विकास कार्य करते हैं, सारे साधन शहरों की ओर प्रवाहित हो जाते हैं, क्योंकि हमारी सारी माँग शहरी उपभोग वस्तुओं की है। जिस प्रकार घरेलु वस्तुएं विदेशी वस्तुओं के सामने प्रतियोगिता में नहीं टिक पाती, वैसे ही ग्रामीण उत्पादन शहरी उत्पादन के सामने नहीं टिक पाते, रेडियो, दूरदर्शन और अन्य प्रचार माध्यमों के विज्ञापनों से ग्रामीण उद्योग प्रतियोगिता में बड़े उद्योगों के सामने टिक नहीं पाते हैं। फलत: शहर और धनी होता जा रहा है और गाँव और गरीब होता जा रहा है।

सुझाव

(1) ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में एक खास त्रुटि यह रही है कि आयोजन के विभिन्न स्तरों पर उसमें लोगों की भागीदारी पर वांछित बल नहीं दिया गया। वर्तमान में ग्रामीण प्रजा उच्चतर जीवन स्तर की आकांक्षी तो है लेकिन विकास कार्यक्रमों में उसकी सक्रिय भागीदारी नहीं बनी है। फलत: इन कार्यक्रमों का स्थानीय महत्व काफी कम हो जाता है और उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती, जिन उद्देश्यों से प्राय: वे चलाए गए होते हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि किसी भी विकास कार्यक्रम को आगे बढ़ाने हेतु सुझाव देने में लोगों की सक्रिय भागीदारी को नकारा न जाये।

(2) हमारी ग्रामीण प्रजा में यह एक गलत धारणा बन गई है कि विकास कार्यों के लिए बाहरी सहायता अनिवार्य है और उसके बगैर कुछ हो ही नहीं सकता। यह तो माना जा सकता है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में बाहरी मदद की जरूरत हो सकती है लेकिन अन्तत: तो लोगों को स्वयं पैरों पर ही खड़ा रहना सीखना होगा, अर्थात बाहरी सहायता को योजनाएं घड़ने, कार्यक्रम बनाने, जरूरी पूंजी, निर्माण करने आदि तक यथा संभव सीमित रखना चाहिए। आगे के लिये लोगों में उत्साह जागृत करने एवं उनका सहयोग पाने के लिये कार्यक्रमों के परिणामों का समान रूप से वितरण एवं उपभोग होने की भावना और विश्वास को विकसित करना होगा।

(3) ग्रामीण विकास में सरकार की मदद और भूमिका जितनी जरूरी है उतनी ही स्वयंसेवी संस्थाओं की भी। स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका हालांकि एक तय सीमा तक ही होती है लेकिन होती महत्वपूर्ण है। स्वयंसेवी संस्थाएं शिक्षा, चिकित्सा, कुटीर उद्योग, पेयजल, प्रौढ़ शिक्षा जैसे कार्यों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। इसके लिए इन संस्थाओं को सरकार से अनुदान मिलने की भी व्यवस्था है। इसके अलावा स्वयंसेवी संस्थाएं परियोजनाओं के माध्यम से भी अपने लक्ष्यों को पूरा करती हैं। स्वयंसेवी संस्था वास्तव में सरकार और जनता के बीच की कड़ी होती है।

(4) जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों का कर्त्तव्य है कि वे गाँवों की मूल समस्याओं का बराबर अध्ययन करते रहें तथा उनके समाधान हेतु ग्रामीण स्तर पर ही सरकार द्वारा इन्हें दूर

करने का प्रयास करें ।

(5) हमें व्यर्थ के दिखावे तथा अनुत्पादक खर्च करने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित करना होगा ताकि पूंजी निवेश संतुलित हो सके ।

(6) निरक्षरता उन्मूलन की दिशा में सफलता हासिल करनी होगी । पुरुषों में 2/9 पुरुष और स्त्रियों में 4/5 स्त्रियां चार दशाब्दी के बाद भी अशिक्षित हैं । विश्व बैंक के अनुमान के अनुसार इस शताब्दी के अंत में इस धरती के कुल अशिक्षित 54 प्रतिशत होंगे । अतः निरक्षरता उन्मूलन हेतु वयस्क शिक्षा अभियान काफी उपयुक्त है । जिसके माध्यम से ग्रामीणों तक कृषि और ग्रामोद्योग संबंधित साहित्य, दैनिक समाचार की तरह पहुँचना होगा, तभी ग्रामीणों द्वारा सहकारी समितियों का निर्माण, संयुक्त रूप से अपने हितों का संरक्षण और निर्धनता रोग को भगाना संभव हो सकेगा ।

(7) कृषि कार्य में लगे लोगों को अपनी गतिविधियों को कृषि संसाधन की गतिविधियों से जोड़ने तथा और अधिक आय देने वाली फसलों को उगाकर अन्य कृषि गतिविधियों पर भी ध्यान देना चाहिए । आज भी हमारी राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा 35 प्रतिशत है और करीब दो तिहाई श्रमजीवी लोग खेती बाड़ी पर निर्भर हैं । कृषि आधारित उद्योग कृषि क्षेत्र और औद्योगिक क्षेत्र के बीच मजबूत कड़ी का काम करते हैं । ये उद्योग ग्रामीण लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाने में काफी सहायक हो सकते हैं । यदि ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर कृषि आधारित उद्योग स्थापित किये जायें तो जल्दी ही गाँवों में ऐसा वातावरण पनपने लगेगा जिससे अपेक्षित सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकेगा । इन उद्योगों में स्थानीय साधनों और स्थानीय लोगों की प्रतिभा का समुचित उपयोग किया जा सकता है । इससे गाँवों में रोजगार भी उपलब्ध होंगे तथा गाँव की आजादी का शहरों पर पड़ने वाला दबाव कम होगा, इसके फलस्वरूप शहरों को भी अपनी साधन क्षमता का सदुपयोग करने का अवसर मिलेगा तथा गाँव भी आगे बढ़ेंगे ।

(8) ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में पूंजी निर्माण और लाभार्थियों के चयन दोषपूर्ण रहे हैं जिनका कोई स्थानीय महत्व नहीं । ऐसे पूंजी निर्माण करने अथवा सम्पत्ति खड़ी करने में कोई तुक नहीं है । सम्पत्ति निर्माण ऐसे ही होने चाहिए जो स्थानीय परिस्थितियों के साथ मेल खाते हों, क्षेत्रीय अर्धक्षेत्र को मजबूत बनाते हों एवं लक्षित समूह को लाभ पहुँचाते हों ।

(9) हमें कृषि क्षेत्र में यंत्रीकरण को अपनाना होगा, कृषि में यंत्रीकरण से आशय है कि खेत में जुताई से लेकर मण्डी तक फसल पहुँचाने के सभी कार्यों में मशीनों और यंत्रों का प्रयोग करना, यंत्रीकरण हमारी कृषि व्यवस्था को विकसित कर सकता है एवं ग्रामीणों को आत्मनिर्भर बनाकर गरीबी, बेकारी, भुखमरी से मुक्ति दिला सकता है ।

(10) गांवों में लघु व कुटीर उद्योगों का विकास किया जाना चाहिए, जिनमें कि स्थानीय आवश्यकताओं की वस्तुएं निर्मित की जा सकती हैं, इससे ग्रामीणों को अतिरिक्त समय में रोजगार मिल सकेगा जिससे उनकी आय में वृद्धि होगी ।

(11) जनसहयोग से वनों तथा सिंचाई साधनों का विकास भी करना होगा तथा वर्तमान वनों को संरक्षण तो तुरन्त देना होगा ताकि प्रकृति भी प्रचुर वर्षा आदि के रूप में हमारी सही दिशा में मदद करें ।

(12) वर्तमान में यद्यपि 74 प्रतिशत गांवों का विद्युतीकरण तो कर लिया गया, लेकिन कोई ऐसा गांव नहीं जिसको सही ढंग से बिजली उपलब्ध हो रही हो, आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में बिजली उपलब्ध कराई जाये क्योंकि आज विद्युत आर्थिक विकास की आधारशिला बन गई है ।

(13) सरकार यदि ग्रामीण गरीबों, असहायों, शोषितों का हित चाहती है तो हर बड़े-बड़े गाँव या प्रखण्ड स्तर पर एक-दो सरकारी मण्डी का निर्माण अवश्य कराए, इससे किसानों के उत्पाद-वस्तु का मूल्य निर्धारण लाभ को ध्यान में रखकर किया जाएगा, किसानों को विपणन व्यवस्था में भागीदार बनने का अवसर प्राप्त होगा, बिचौलियों की भूमिका समाप्त होगी, किसानों का शोषण समाप्त होगा तथा किसानों का घरेलू जीवन सुखी होगा ।

(14) अनाज उत्पादन जितना महत्व रखता है उससे कम महत्व अनाज भंडारण का नहीं है । भारतीय ग्रामीण किसान पुराने परम्परागत भंडारगृहों में ही अपना अनाज रखते हैं जो वर्षा ऋतु में प्रायः नमीयुक्त हो जाते हैं । जिससे अनाज सड़कर बर्बाद हो जाता है, या फिर सस्ते मूल्य पर ही बेच देना पड़ता है । अतः अनाज को बचाने के लिये हर प्रखण्ड में दो-दो कोल्ड स्टोरों का निर्माण सरकार द्वारा तत्काल किया जाना चाहिए, भंडारगृह का निर्माण कराकर अनाज को बर्बाद होने से बचाया जा सकता है तथा ग्रामीण गरीब किसानों का कल्याण किया जा सकता है ।

(15) सरकार ने ग्रामीण विकास के लिए पाँच किलोमीटर

के फासले पर कम से कम एक बैंक की स्थापना की । इतना ही नहीं, ग्रामीणों के कल्याणार्थ बड़े-बड़े गाँवों में ही नई शाखाएं खोली गईं तथा ग्रामीण-गरीब किसानों, बेरोजगारों को ऋण मिलना शुरू हुआ परन्तु जो शाखाएं गाँवों में खोली गईं, उनके प्रबंध पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया, परिणामस्वरूप शाखाओं की आर्थिक स्थिति कमजोर होती गई । यहाँ तक कि जो ग्रामीण कृषि उत्पाद बेचकर अपनी रकम सुरक्षा हेतु इन शाखाओं में जमा करता है वह भी उसे समय पर नहीं मिल पाती यानि शाखा-प्रबंधक को अपने ग्राहकों से एक-दो दिन का समय भुगतान के लिए लेना पड़ता है । इसके अतिरिक्त बैंक के ऋण देने के तौर-तरीके इतने पेचीदा हैं कि ग्रामीण किसान बैंकों से ऋण लेना नहीं चाहते और साहूकारों के चंगुल में फंस जाते हैं । अतः यह आवश्यक है कि बैंकिंग व्यवस्था को चुस्त व सुगम बनाया जाना चाहिये ।

(16) गांवों के विकास के लिए हमें मूलभूत आवश्यकताएं जैसे— पेयजल, चिकित्सा सुविधाएं, यातायात तथा आवश्यक जिन्सों की पर्याप्त उपलब्धि व वितरण पर समुचित ध्यान देना होगा ।

इस प्रकार निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि ग्राम प्रधान अर्थव्यवस्था होने के नाते भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास बहुत कुछ भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास पर निर्भर करता है । यद्यपि आजादी के बाद से हम कृषि, शिक्षा एवं स्वास्थ्य, उद्योग, परिवहन, ऊर्जा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में बहुत हद तक सफल तो हो सके लेकिन ग्रामीण विकास में कोई विशेष सफलता नहीं मिल पायी । वे ग्रामीण जो सबसे निम्न-वर्ग के हैं, जिनके सामने भर-पेट भोजन का सवाल है, उनकी माली हालत में कोई सुधार नहीं हुआ, अतः ग्रामीण विकास के लिए जो कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं मात्र उन पर संतोष करना पर्याप्त नहीं है । अपितु यह भी देखना होगा कि कार्यक्रम का लाभ प्रत्येक उस व्यक्ति तक पहुँच पा रहा है या नहीं जिनके लिए इस प्रकार के कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं । इसके लिए मूल्यांकन पर बल देना होगा । साथ ही ग्रामीणों को चाहिए कि वे सरकार द्वारा चलाये जाने वाले कार्यक्रमों के प्रति जागरूक हों । अंत में मैं यही कहूँगा कि जब तक ग्राम्य विकास से सम्बन्धित कार्यकर्त्ताओं को नवीनतम जानकारी से निरन्तर सम्पन्न नहीं कराया जा सकता, तब तक ग्राम्य विकास के कार्यक्रमों को पूर्ण कुशलता तथा सक्षमता के साथ सम्पादित नहीं कराया जा सकता ।

स्मृति कुंज
माला भवन, अल्मोड़ा
(उ.प्र.) पिन 263601

ग्रामीण विकास कार्यक्रम - एक मूल्यांकन

डा.एस.सी. जैन

भारतीय आर्थिक विकास का आधार ग्रामीण क्षेत्र विकास पर निर्भर है। इस क्षेत्र में उन सम्पूर्ण परिस्थितियों का निर्माण करना होता है, जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की समृद्धि में सहायक होती हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत के लगभग छः लाख गाँवों में कुल जनसंख्या का 80% प्रतिशत भाग निवास करता है अर्थात् श्रमशक्ति का एक बड़ा भाग गाँवों में ही निवास करता है। राष्ट्रीय आय में ग्रामीण क्षेत्र का लगभग 33% प्रतिशत है और निर्यात के क्षेत्र में एक चौथाई हिस्सा कृषि का है। इसके अलावा कृषि ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय भी है। भारत में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त आय में 46 प्रतिशत योगदान ग्रामीण क्षेत्रों का ही होता है। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

भारतीय आर्थिक नियोजन के 40 वर्ष पूर्ण होने वाले हैं, इस अवधि में योजनाओं में मुख्य रूप से आर्थिक विकास पर विशेष बल दिया गया। योजना काल में आर्थिक विकास का इतिहास उपलब्धियों एवं असफलताओं से परिपूर्ण रहा है। नियोजित विकास के दौरान सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में अधिक विनियोग किया गया फिर भी हम प्रगति की गंभीर स्थिति से बाहर नहीं निकल पाये हैं, यही सबसे बड़ी विफलता है। मुख्य रूप से यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास की यह तस्वीर ग्रामीण विकास एवं निर्धनता आदि को दूर करने में सफल हुई है।

ग्रामीण विकास

ग्रामीण विकास से आशय एक ऐसी नियोजन प्रक्रिया से है, जो ग्रामीण एवं कमजोर बर्ग के सामाजिक, आर्थिक स्तर को स्थानीय संसाधनों के अनुकूलतम उपयोग द्वारा ऊपर उठा सकें। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत आर्थिक पहलू से आशय उत्पादन, रोजगार, आय एवं व्यवसाय की जागृति से है। इसके अतिरिक्त अनेक अर्थशास्त्री ग्रामीण विकास का अर्थ केवल आर्थिक विकास से लगा सकते हैं परन्तु समाज वैज्ञानिक इसमें सामाजिक शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक विकास को भी सम्मिलित करते हैं। एक दृष्टि से ग्रामीण विकास का अर्थ ग्रामीण गरीब रेखा के नीचे रहने वाले लोगों का जीवन स्तर उठाना है। वैसे ग्रामीण क्षेत्र के विकास में मुख्यतः कृषि पर अधिक बल होने के साथ-साथ संचार, परिवहन, शिक्षा स्वास्थ्य, और सफाई को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। इस तरह ग्रामीण विकास एक त्रिमुखी कार्यक्रम है :–

(1) यह ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में लोगों को सम्मिलित किया जाता है।

(2) यह एक प्रणाली है इसमें परम्परागत ग्रामीण संस्कृति को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रयोगों से आधुनिक बनाया जाता है।

(3) यह एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है, जिसके द्वारा जीवन की गुणवत्ता में सुधार किये जाते हैं।

विभिन्न कार्यक्रम

ग्रामीण विकास कार्यक्रम वे कार्यक्रम हैं, जो ग्रामीण क्षेत्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए प्राथमिकता के तौर पर कार्यान्वित किये जाते हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य ग्रामीण जनसंख्या को पर्याप्त रोजगार उपलब्ध कराकर उनकी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करना है, जिससे शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र के मध्य व्याप्त आर्थिक असन्तुलन को दूर किया जा सके।

नियोजित आर्थिक विकास के माध्यम से ग्रामीण विकास के लिये विभिन्न कार्यक्रम, बीस सूत्री कार्यक्रम, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, स्वरोजगार ग्रामीण युवा प्रशिक्षण कार्यक्रम, ग्रामीण क्षेत्रों में महिला एवं बाल विकास खण्ड कार्यक्रम, भूमि सुधार कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना, गहन जिला कृषि कार्यक्रम, ग्रामीण उद्योग परियोजना, गहन कृषि क्षेत्र कार्यक्रम, ग्रामीण जन-शक्ति, सूखा पीड़ित क्षेत्र कार्यक्रम, लघुकृषक विकास एजेन्सी विशेष दुग्ध उत्पादन कार्यक्रम, आदि अनेक कार्यक्रम चलाये गये जिनका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों का सर्वांगीण विकास करना है। इसके अतिरिक्त अन्य कार्यक्रमों में वृक्षारोपण, मछली पालन, डेरी उद्योग, घरेलु उद्योग, मधुमक्खी पालन, भेड़ पालन, आदि अनेक परम्परागत उद्योगों को प्रोत्साहन देने की नवीन नीतियाँ निर्धारित की गई हैं लेकिन यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है, कि इन कार्यक्रमों का सम्पूर्ण लाभ ग्रामीणों तक नहीं पहुँच पाया है।

शायद इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में कुछ कमी रही है। ग्रामीण क्षेत्रों के पिछड़े होने के अनेक कारण हैं जिनमें प्रशासनिक समस्याएँ अधिक उत्तरदायी रही हैं। योजना बद्ध विकास कार्यक्रमों का लगभग 70 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों से सीधा सम्बन्ध रखता है। उन्नत कृषि तकनीकें, सिंचाई की सुविधाएं, ग्रामीण विद्युतीकरण, जलापूर्ति लघु एवं कुटीर उद्योग, परिवहन, शिक्षण, स्वास्थ्य आदि ऐसे कार्यक्रम हैं जो ग्रामीण विकास के मुख्य आधार माने जाते हैं।

मूल्यांकन

विभिन्न कार्यक्रमों से ग्रामीण क्षेत्रों के वे भाग जो शहरी क्षेत्रों से जुड़े हुऐ हैं उनमें आर्थिक समृद्धि बढ़ी है। परन्तु यदि सरकार की ग्रामीण एवं गरीबी उन्मूलन नीतियों एवं कार्यक्रमों का मूल्याकंन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं, कि सरकार का इस दिशा में भरसक प्रयास जारी हैं, लेकिन इन विकास कार्यक्रमों की उपलब्धियाँ सन्तोषजनक नहीं हैं। इन कार्यक्रमों से सम्बद्ध लोगों का पारिश्रमिक पैसे की दृष्टि से बढ़ा है लेकिन वास्तविकता यह है कि इसमें कमी आयी है। जिस प्रकार से मूल्यों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई उस अनुपात में मजदूरी नहीं बढ़ी, इस प्रकार हमारे विचार से ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के मुख्यतः दो कारण जिम्मेदार ठहराये जा सकते हैं। (अ) असमानता (ब) विकास की कमी। आर्थिक समृद्धि तथा गरीबी निवारण की दिशा में यह आवश्यक है कि उक्त दोनों कारणों को एक साथ क्रियान्वित किया जाये।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश में अनेक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं के बावजूद जिस प्रकार सरकार विकास का दावा करती है उसके अनुरूप उपलब्धियाँ सीमित हैं। वैज्ञानिक तकनीक एवं औद्योगिक समृद्धि का समुचित लाभ अभी तक समस्त ग्रामवासियों को नहीं मिल पाया है। इन सम्पूर्ण कार्यक्रमों एवं योजनाओं का पूरा लाभ अधिकारियों, बिचौलियों एव कर्मचारियों की जेबों में चला जा रहा है। इसके अलावा, ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिये ठीक नीति का निर्धारण न होने से अनेक समस्यायें उत्पन्न हुई हैं। कुछ राज्य ऐसे हैं जहाँ पर भूमि सुधार कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया गया, तो किन्हीं राज्यों में कम, इस प्रकार की असमानता के परिणाम स्वरूप गरीबी और बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हुई है। देश में अन्य राज्यों में अपेक्षाकृत विकास की गति तेज रही है। कार्यक्रमों से ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक सम्पन्नता तथा कृषि उत्पादन में आत्म निर्भरता के लिये हरित क्रान्ति का जन्म हुआ।

प्रशासनिक संरचना

हमारे देश में जो प्रशासनिक संरचना विद्यमान है वह ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सभी प्रमुख कार्यक्रम तैयार करती है और कार्यान्वयन के लिए प्रशासनिक संरचना के नीचे भेज देती है। इस प्रकार ग्रामीण विकास का प्रशासन ढांचा दो स्तरों पर होता है। प्रथम स्तर में ग्राम सेवक, शिक्षक, पटवारी, ग्रामीण कार्यकर्त्ता, तहसीलदार, एस.डी.एम., विकास अधिकारी, सहकारिता प्रसार अधिकारी एवं जिलाधीश आदि विकास कार्यों के लिए उत्तरदायी हैं। द्वितीय स्तर में पंचायती राज के प्रतिनिधि, पंच, सरपंच, ब्लाक प्रमुख, जिला प्रमुख आदि विकास कार्यों में सहयोग देते हैं। जिला प्रशासन को पर्याप्त अधिकार प्राप्त होते हैं, किन्तु पूर्ण सूचनाऐं प्राप्त नहीं होती हैं, जबकि यह बहुत जरूरी है कि उनको समग्र कार्यक्रमों की सूचनायें प्राप्त हों। प्रशासकों को व्यवहार तकनीक में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये ताकि उनमें समूह भावना जागृत हो सके।

ग्रामीण विकास प्रशासन में विकास अधिकारी प्रमुख व्यक्ति होता है, उसके कार्यक्षेत्र का आधार स्पष्ट नहीं होता। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न वर्गों एवं समूहों के मध्य टकराव एवं अविश्वास की स्थिति पाई जाती है जो सर्वथा विकास में बाधक है। इन सभी का उत्तरदायित्व खण्ड विकास अधिकारी का होता है। जिला स्तर पर जिलाधीश तकनीकी अधिकारियों का जिलाध्यक्ष होता है, जिसके कारण वह न तो अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियंत्रण रख पाता है और न साधनों, आवश्यकताओं, प्राथमिकताओं में वरीयता प्राप्त करने में समर्थ हो पाता है।

ग्रामीण जन-जीवन का प्रभाव

उपयुक्त कार्यक्रमों एवं योजनाओं के परिणाम स्वरूप ग्रामीण जीवन पर संतोषजनक प्रभाव नहीं पड़ा है। प्रथम योजना से लेकर सातवीं पंचवर्षीय योजना समाप्त करने के बाद भी ग्रामीण जीवन वही रूढ़िगत, परम्पराओं, रीतिरिवाजों के साथ जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं से संघर्ष कर रहा है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम और ग्रामीण विकास जैसी अनेक योजनाओं से ग्रामीण जीवन के सम्पूर्ण विकास का सोपान सजाया गया लेकिन एक सूक्ष्म दृष्टिकोण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि विगत चार दशकों में क्रियाशील आर्थिक नीति, विकास योजना और इसी प्रकार के अन्य कार्यक्रम ग्रामीण जीवन के विकास में सफल नहीं रहे। जिसका महत्वपूर्ण

कारण यह भी रहा कि ग्रामीण विकास के विभिन्न सहायता कार्यक्रमों के अखिल उपभोग का कोई ध्यान नहीं रखा गया। ग्रामीण जनसंख्या का कल्याण कृषि क्षेत्र में विविधीकरण तथा इसके विकास और ग्रामीण क्षेत्र के सामाजिक और आर्थिक ढांचे के विस्तार पर निर्भर करता है। यह खेद का विषय है कि इन क्षेत्रों पर अब तक ध्यान नहीं दिया गया।

शासन ने खादी ग्रामोद्योग के द्वारा सातवीं योजना में 636.25 करोड़ रुपये एवं जवाहर रोजगार योजना में 2625 करोड़ रुपये खर्च किए फिर भी ग्रामीणों के समुचित विकास में आशाजनक परिणाम सामने नहीं आये। आठवीं पंचवर्षीय योजना में परियोजना लागत के 50 प्रतिशत का आबंटन ग्रामीण विकास के लिये शुभ संकेत है।

प्रमुख समस्याएँ

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की प्रमुख समस्याएं हैं जो निम्न हैं :–

(1) कार्यक्रमों को लागू करने वाला प्रशासन ढांचा अनेक कमियों से ग्रस्त है।

(2) योजनाओं के व्यय का बहुत बड़ा भाग बिचौलिये हड़प जाते हैं।

(3) कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में लगे लोगों की उदासीनता।

(4) विकास खण्ड एवं ग्रामीण स्तर पर विकास कार्यक्रमों के लिये जन प्रतिनिधि का पर्याप्त सहयोग नहीं मिलता है।

(5) ग्रामीण विकास की असफलता का कारण स्थानीय गुणक का सृजित न होना तथा दक्षता पर आधारित सम्पतियां सृजित नहीं हो सकी।

(6) विकास की जिम्मेदारी का ठीक तरीके से निर्वाह न करना।

(7) ग्रामीणों में साक्षरता।

(8) ग्रामीणों में योजना के प्रति रूचि और लगाव का अभाव।

(9) अन्ध विश्वास और परम्परावादी दृष्टिकोण।

(10) सहायता प्राप्त करने वाले की पात्रता का ध्यान नहीं दिया जाना।

(11) विकास अप्रशासन की मुख्य समस्या प्रबन्ध एवं मनोवृत्ति से संबंध रखती है।

(12) निचले स्तर से नियोजन केवल कागजों पर है।

(13) प्रशासकीय अधिकारियों में प्रशिक्षण का अभाव।

सुझाव

उपरोक्त प्रमुख समस्याओं से निपटने के लिए निम्न सुझाव आवश्यक है :–

(1) ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में प्रशासकीय तंत्र को पूर्ण निष्ठा, ईमानदारी एवं लगन से कार्य करना चाहिए।

(2) नीति निर्धारण की प्रक्रिया सम्पूर्ण राष्ट्र की न होकर अलग-अलग भागों में बनायी जाये।

(3) कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के पूर्व अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त होना चाहिए।

(4) कृषि को उद्योग का स्वरूप देने हेतु आधुनिक तकनीक से अवगत करायें।

(5) सुरक्षा बीमा अनिवार्य किया जाये।

(6) अधिकांश योजनायें सहकारिता के माध्यम से संचालित की जाये।

(7) संगठित क्षेत्र तथा असंगठित क्षेत्र की असमानता को कम किया जाये।

(8) ग्रामीण रीतिरिवाज एवं जातपात में नई चेतना जागृत की जाये।

(9) साक्षरता स्तर में आमूल चूल परिवर्तन किये जायें।

(10) ग्रामीण विकास की जिम्मेदारी में गाँव के लोगों को ही शामिल किया जाये।

(11) ग्रामीण विकास पुर्ननिर्माण हेतु स्थानीय प्रशासन की जनता की भागीदारी हो।

(12) गरीबी रेखा के लिये आय की जो सीमा है उस पर पुन: विचार किया जाये।

(13) बैंक अधिकारियों का व्यवहार व्यापारिक न होकर सामाजिक हो।

(14) योजनाओं की जानकारी ग्रामीणजन को प्रशिक्षण के रूप में दी जाये।

(15) पंचायती राज के तीन स्तर हों।

(16) ग्रामीण विकास में कृषि, विपणन, वित्त, संचार आदि बातों पर विशेष बल दिया जाना चाहिये।

निष्कर्ष :

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का गहन विवेचनात्मक अध्ययन करने के पश्चात, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विगत चार दशकों में ग्रामीण विकास के अतिरिक्त शायद ही

अन्य कोई विषय ऐसा रहा हो, जो शासन, राजनीतिज्ञों, एवं अर्थशास्त्रियों के विचार विमर्श का केन्द्र न बना हो। ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अपनी विशेषताएं होती है। मानसून की अनिश्चितता, कृषि की नई उत्पादकता, निर्धनता, बेरोजगारी अतिजनसंख्या, परम्परागत कुटीर उद्योग आदि विशेषताएं ग्रामीण क्षेत्र को शहरी क्षेत्र से भिन्न रखने में सहायक हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि समस्या का निदान क्या है? क्या विकास योजनायें ग्रामीण वास्तविकताओं से परिचित हैं। इसके लिये मुख्य आधार राजनैतिक जागरूकता, कटिबद्धता, ईमानदारी तथा नियोजन में प्राथमिकताओं का निर्धारण क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन की एक साथ आवश्यकता सर्वथा उपयुक्त है।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए विकास कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन हेतु ग्रामीण प्रशासन पर नये सिरे से ध्यान देने की महती आवश्यकता है। इस प्रकार ग्रामीण प्रशासन जितना अधिक सक्रिय और संवेदनशील होगा उतनी ही तीव्रता से हमारी विकास योजनायें सफल हो सकेंगी। इसके साथ ही ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से सम्बद्ध सभी पक्षों को अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करना चाहिए तथा ग्रामीण विकास राष्ट्रीय विकास का पर्याय माना जा सकेगा।

प्रवक्ता वाणिज्य
डेनियलसन कालेज
छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

साक्षर दीवाली

विनय जोशी

अहा ! दीवाली, मतवाली तुम आ जाती हो
कितना बचा है अन्धकार जग में,
बता जाती हो।

अन्धी गलियाँ अब भी तो
बस्ती हैं हर बस्ती में
भूल गये सब; नशे में धुत्त हैं,
स्वार्थ की मद मस्ती में
गाँव से नाते तोड़ रहे,
आधार को अपने छोड़ रहे
शहर को सब अपनाना चाहें,
गाँव से दौड़ के आना चाहे,
पर वे सारे - आह बेचारे
जान न पाये
बिना नीढ़ के खग बेचारे
जो होते हैं।
ऋतुओं की विपदा में वे कैसे रोते हैं।
शहरों में बेघर ये
तकदीर के मारे
लहू के आंसू पीते हैं
नारकीय जीवन जीते हैं
साये में गगन के सोते हैं
औरों को घर देने वाले

आधार बिना क्या नींव
नींव बिन आधार है त्रुटिपूर्ण
पूरी इबारत।
ग्राम हमारे घर हैं
हैं आधार हमारा;
बने रहें ये बसे रहें
हम तभी जीयेंगे
अपना घर वैसे भी होता
सबसे न्यारा।
सुविधा दे सुख दे हर-दम
ये प्यारा - प्यारा।

इस बार दीवाली
सभी के मन में
ये तुम कहना
अज्ञान-तिमिर है दूर भगाओ,
जड़ से इसे उखाड़ो
ज्ञान-दीप है इसे जगाओ
जड़ में इसे बसा लो।
दीप-शिखा सन्देश दे रही
जगमग - जगमग कर लो
अनपढ़ता को दूर हटा दो
सबको साक्षर कर लो।

कुटीर उद्योग क्षेत्र की चुनौतियाँ

हरि बिश्नोई

गिने चुने शहरों की बात अलग है जहाँ दूर-दूर तक लोहे और सीमेन्ट की अट्टालिकाओं, विद्युत चालित संयंत्रों तथा बड़े-बड़े उद्योगों का कोलाहल मचा रहता है लेकिन इसी के साथ एक संसार हमारे गांवों का है जहाँ हिन्दुस्तान की आत्मा बसती है। गांव और कस्बों में रहने वाले लोग अपनी सीमित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए ऐसे अनेक साधनों, उद्योग धन्धों से अपनी जीविका अर्जित करते हैं जिनसे न तो औद्योगिक अशान्ति का सैलाब आता है न प्रदूषण का विषवमन होता है और न कहीं पर पूँजी के अभाव की समस्या आड़े आती है। शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में रहने वाले करोड़ों लोग आज भी कुटीर उद्योगों से जुड़े हैं और सदियों से उन परिवारों में परम्परागत ज्ञान, लंबे अनुभव एवं कौशल की त्रिवेणी बह रही है।

विश्व भर में सर्वाधिक कुटीर उद्योग हमारे देश में हैं किन्तु जब भी कहीं औद्योगिक प्रगति की बात होती है तो प्रायः बड़े उद्योगों की स्थापना और उनके विकास पर ही ज्यादा जोर दिया जाता है लेकिन इसके बावजूद भी यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो किसी भी देश में कुटीर उद्योगों की उपयोगिता को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता क्योंकि राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में यह भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अत्यन्त अनुकूल पूँजी, उत्पाद-अनुपात तथा रोजगार की सम्भावनाओं के अतिरिक्त आज के अवसरों में वृद्धि जैसी विशेषताओं के कारण भारत जैसे विकासशील देश में इनकी महत्ता और भी अधिक बढ़ जाती है क्योंकि अभी हमारे देश में करोड़ों लोग ऐसे हैं जो गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करते हैं और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठाने के लिए कारगर उपाय किए जाने हैं। ऐसी स्थिति में कुटीर उद्योगों के लिए बढ़ावा दिए जाने की बात को भी दृष्टिगत रखना होगा।

प्रायः लघु एवं कुटीर उद्योगों में कोई विशेष अन्तर नहीं समझता जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। मूलतः कुटीर उद्योगों में ऐसे उद्योग आते हैं जो मुख्य रूप से परिवार के सदस्यों द्वारा पूर्ण अथवा अंशकालीन धंधे के रूप में चलाए जाते हैं। नाममात्र के पूँजी विनियोजन से चलने वाले ऐसे उद्योगों में आमतौर पर हाथ से उत्पादन किया जाता है और यन्त्रादि का उपयोग कम से कम किया जाता है। कुटीर उद्योगों में वेतन भोगी श्रमिकों की प्रधानता नहीं होती। बल्कि इन्हें तो परिवार के सदस्यों द्वारा मुख्य अथवा सहायक धन्धे के रूप में संचालित किया जाता है। उत्पादन प्रक्रिया भी पूर्णतः परम्परागत स्वरूप में होती है। जबकि लघु उद्योगों में ऐसी स्थिति नहीं है तथा आधुनिक तरीकों का प्रयोग होने लगा है।

यह सच है कि कुटीर उद्योगों द्वारा जीवन यापन करने वालों को शुरू से ही आर्थिक कठिनाईयों का दावानल झुलसाता रहा है। चटखारे लेकर चर्चा करने अथवा मात्र चिन्ता करने भर की जरूरत नहीं है बल्कि मूलभूत आवश्कयता उन तमाम दिक्कतों की तह में उतर कर रास्ता खोजने और हल सुझाने की है। जिससे कि हमारे कुटीर उद्योगों में लगे असंख्य लोगों को उनकी मेहनत का उचित मूल्य प्राप्त हो सके क्योंकि हाथ से बनी चीजों की माँग आज विश्व भर में है। लेकिन उत्पादक का हक बीच के व्यापारी निगल जाते हैं और अन्तिम उपभोक्ता अथवा क्रेता तक पहुंचते-पहुंचते चीजों के दाम कई गुना तक बढ़ जाते हैं।

यद्यपि कुटीर उद्योग धन्धे में जो उत्पादन होता है उससे स्थानीय माँग को ही पूरा किया जाता है लेकिन हस्तशिल्प के बढ़ते प्रभाव और उच्च कलात्मक चीजों की सुन्दरता के कारण हाथी-दांत तथा पत्थर से बनी चीजें, शाल-दुशाले, कालीन गलीचे आदि सजावटी सामान अपने देश की सीमाओं को लाँघकर विदेशों में पहुँच रहा है। नियमित निर्यात के द्वारा विदेशी मुद्रा कमाने में हमारे कुटीर उद्योग भी पीछे नहीं हैं। मुरादाबाद का पीतल हो या बनारस के कालीन। आगरे का संगमरमर हो या दक्षिण के बांस। राजस्थान की ओढनी हो या मेरठ की खादी देश भर में ऐसी तमाम चीजें हैं जो नायाब हैं और वे किसी बड़े कारखाने में नहीं बनती। वरन घर-घर में उन्हें अपने हाथों से बच्चे बूढ़े सभी एक साथ मिलकर तैयार करते हैं। ऐसा उत्पादन अधिकाँश कुटीर उद्योगों के अन्तर्गत आता है। यदि इतिहास पर नजर डालें तो स्वतन्त्रता से पूर्व जब हमारे देश में औद्योगिक क्रान्ति अपने शुरूआती दौर में नहीं आ पाई थी तब प्राचीन कुटीर उद्योगों को राजाओं और

नवाबों का संरक्षण प्राप्त था तथा कारीगरों द्वारा तैयार माल के अच्छे दाम मिलते थे। ब्रिटिश शासन के पाँवों तले कुटीर उद्योगों को बुरी तरह कुचला गया। फलस्वरूप ऐसी वस्तुओं की माँग कम होती चली गई क्योंकि अंग्रेजों को तो इंग्लैंड में तैयार माल भारत में बेचना था। 1769 में बंगाल में रेशमी वस्त्रों पर कहर टूटा। कारीगरों को अपने घरों में रह कर काम करने के स्थान पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कारखानों में काम करने के लिए मजबूर किया गया। इसके बाद पश्चिमी सभ्यता के विकास, यूरोप के देशों में मशीनों से तैयार सस्ते माल, उन्मुक्त व्यापार नीति तथा कड़ी प्रतिस्पर्धा के कारण भारतीय कुटीर उद्योगों की हालत खस्ता होने लगी और उत्पादन में हाथ के स्थान पर मशीनों के उपयोग का जोर शुरू हुआ। उधर भयंकर अकाल गरीबी और बाजार के अभाव में भी अनेक परिवार अपने परम्परागत धन्धों को छोड़ कर अन्य व्यवसाय की ओर आकर्षित होने लगे। इसका सीधा प्रभाव भारतीय कुटीर उद्योगों पर पड़ा। लेकिन फिर भी पिता-पुत्र अथवा उस्ताद और शार्गिद की परम्पराओं से ही कारीगरों का हस्तान्तरण एक से दूसरी पीढ़ी में चलता रहा। तकनीकी प्रशिक्षण अथवा सुविधाओं की उपलब्धता का कोई प्रश्न ही कभी नहीं उठा।

लघु उद्योग में जिस प्रकार प्रक्रियाओं की नियम पुस्तिकाएं उपलब्ध हैं उसी प्रकार कुटीर उद्योगों के लिए भी होनी चाहिए ताकि कुटीर उद्योगों की नव स्थापना और चल रहे धन्धों का विकास हो सके। सरकारी नीतियों तथा कार्यक्रमों के बावजूद कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में अनभिज्ञता और सूचना के अभाव का अन्धकार व्याप्त है। उसे दूर करने के लिए आवश्यक है कि पिछड़े हुए क्षेत्रों में दी जा रही रियायतें और सुविधाएँ जरूरत मन्द लोगों को पता हों। साथ ही उपयुक्त प्रौद्योगिकी की पहुँच में भी कुटीर उद्योग होने चाहिए। लघु उद्योग विकास संगठन द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका की भाँति नियमित प्रकाशनों से भी लाभ पहुँच सकता है।

दरअसल ग्राम्य विकास की परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है क्योंकि प्राचीन ग्रन्थ मनुस्मृति के रचनाकाल तक हमारे देश में गाँव तथा नगरों की व्यवस्था विकास की ओर अग्रसर होने लगी थी। ऐसे अनेक संकेत प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं जिनमें ग्राम्य प्रशासन का प्राचीन स्वरूप हमारे सामने स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आता है। गांव पहले भी थे और आज भी हैं। रहन सहन का ढंग बदला है। लेकिन खाद्यान्न की आपूर्ति करने में तथा कुटीर उद्योग के धन्धों में उनका महत्व कम नहीं हुआ और न भविष्य में कम हो पाएगा। लेकिन अब तक बहुत कष्ट भोग चुके गाँव वासियों को राहत तभी मिल सकती है जबकि वे स्थानीय परिस्थितियों, कच्चे माल की उपलब्धता और माँग के अनुरूप कुटीर उद्योगों को बढ़ावा दें। इससे ही शहरों पर बढ़ते दबाव और खाली होते गाँवों की स्थिति में सुधार होगा। कुटीर उद्योगों को बढ़ावा मिलने से ग्रामीण बेकारों को काम मिल सकता है तथा शोषण की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए यह आवश्यक है कि उद्योग धन्धों का विकेन्द्रीकरण हो। भारत के आर्थिक सामाजिक एवं प्रचुर संसाधनों की स्थिति को देखते हुए गाँधी जी ने भी इस बात पर विशेष जोर दिया था क्योंकि हमारे गाँवों का सर्वांगीण विकास जहाँ एक और कृषि उत्पादन में वृद्धि और पशु पालन आदि से प्रभावित होता है वहीं दूसरी और वह लघु और कुटीर उद्योग से भी निकट का सम्बन्ध रखता है। क्योंकि इसके अभाव में ग्रामीण क्षेत्रों के उत्थान की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ग्रामीण अर्थव्यवस्था को आत्म निर्भर बनाने के लिए तो यह और भी आवश्यक है।

हमारा अर्थ चिन्तन आदर्श होना आवश्यक है ताकि गरीबी को दूर किया जा सके। कुटीर उद्योगों के माध्यम से अधिक से अधिक रोजगार के अवसरों को भी प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि हरेक हाथ को काम मिल सके। इस दृष्टि से हमारे देश की गरीबी का इलाज गांधी दर्शन में है क्योंकि उन्होंने कहा था कि भारत की दरिद्रता को अर्थशास्त्री दूर नहीं कर सकते। उनके चिन्तन में श्रम की उपयोगिता थी। नैतिकता से दूर मशीनों के सहारे काम करते रहने को वह अच्छा नहीं मानते थे। श्रम, समय और संसाधनों को व्यर्थ में बरबाद नहीं किया जाना चाहिए। इसके लिए हृदय परिवर्तन किया जाना अति आवश्यक है। एक सच यह भी है कि समाज की मानसिक अवधारणाऐं इतनी जल्दी नहीं बदला करती। लेकिन यदि कुशल नेतृत्व मिले तो हमें उचित आधार मिल सकता है किन्तु कुटीर उद्योगों की स्थिति सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि उनके पतन के जो भी कारण रहे हैं पहले उनकी विवेचना की जाए क्योंकि जापान जैसे देश में भी बड़े उद्योगों के साथ कुटीर उद्योगों के समन्वय की बात को स्वीकारा जाता है। इसके अलावा स्वीटज़रलैण्ड, डेनमार्क आदि की अर्थव्यवस्था में भी लघु कुटीर तथा डेयरी उद्योग का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से कुटीर उद्योगों का स्थान महत्वपूर्ण है क्योंकि भारी जन संख्या, अशिक्षा और बेरोजगारी के कारण करोड़ों परिवारों में गरीबी की झलक साफ दिखाई देती है। समाज में उन के जीने का अधिकार तो

उनके पास है लेकिन उनके पास पर्याप्त साधन नहीं है। फलस्वरूप आर्थिक विषमता के चक्रव्यूह में फंस कर वे कराहने के अतिरिक्त और कर भी क्या सकते हैं। ऐसी स्थिति में हमारे कुटीर उद्योगों में ही इन्हें आशा की किरण दिखाई देती है। साथ ही पारिवारिक लोगों की मदद से चलने वाले कुटीर उद्योग धन्धों से ही उन सभी पीढ़ियों को उस महान सांस्कृतिक सभ्यता की विरासत हस्तशिल्प के रूप में प्राप्त होती है जो आगे चलकर उनकी जीविका अर्जित करने में मदद करती है।

कुटीर उद्योगों के कुछ प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं :–

राष्ट्रीय उत्पादन वृद्धि में सहायक।
अतिरिक्त आय का बेहतर साधन।
वृहत उद्योगों में सहायक।
निर्यात से विदेशी मुद्रा अर्जन।
पारम्परिक कलाओं का संरक्षण एवं विकास।
कृषि एवं नौकरियों पर जनसंख्या के दबाव में कमी।
न्यूनतम पूँजी से चलाया जाना सम्भव।
सहायक धन्धों के रूप में अंगीकृत।
गरीबी तथा बेकारी उन्मूलन में मदद।
लघु तथा वृहत उद्योगों की समस्यों से मुक्ति।

यह बात सच है कि औद्योगीकरण आधुनिक युग की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। औद्योगिक विकास के बगैर प्रगति का सपना पूरा नहीं हो सकता है। देश वासियों को जिन्दगी की सारी सुविधाएें और साधन उपलब्ध कराने के लिए औद्योगिक क्रान्ति इसी कारण से जरूरी है। लेकिन हम सब उन तमाम खतरों तथा समस्याओं से भी अच्छी तरह से वाकिफ है, बढ़ते औद्योगीकरण की वजह से हम बर्तमान को कड़ुवा और भविष्य को भयावह बना रहे हैं। मिट्टी, पानी और हवा तीनों प्रतिदिन खराब होती जा रही हैं। लेकिन फिर भी कारखानों कि चिमनियाँ धुऐं के गुबार छोड़ रही हैं। जहरीला पानी नदी नालों में मिल रहा है। अंधाधुन्ध रासायनिक उर्वरक और कीटनाशी थकी हारी मिट्टी की मिट्टी खराब करने पर तुले हुए हैं। जंगल उजड़ रहे हैं लेकिन इस सब को रोक पाना फिर भी सम्भव नहीं है। इतना अवश्य है कि विनाश की कीमत पर विकास की बात गले नहीं उतरती अतः निरन्तर घटते हुए हमारे गांव और मूल्यवान जंगलों को बचाने का एक मात्र रास्ता यही है कि हमारी आबादी का जो बड़ा हिस्सा आज कुटीर उद्योगों में लगा है उसकी सुध ली जाए। मानवीय दृष्टिकोण को दृष्टिगत रखते हुए निरन्तर और सचेष्ट प्रयास किए जाएं ताकि देश में उपलब्ध प्रचुर संसाधनों का दोहन विवेकपूर्ण ढंग से किया जाये साथ ही साथ आवश्यकता इस बात की है कि कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में छोटे से छोटे व्यक्ति का योगदान होना चाहिए। चाहे वह सामाजिक रूप से हो अथवा अकेले। मशीनों की सहायता से हो अथवा हाथ निर्मित उत्पादन में क्योंकि हाथ से बनी वस्तुओं का जमाना आज भी है।

दैनिक जीवन में काम आने वाली अनेक उपयोगी चीजों के माध्यम से कुटीर उद्योगों में हमारी कला और सांस्कृतिक विरासत के अनुरूप स्वरूप को सजाया और संवारा गया है। कुटीर उद्योग धन्धों में होने वाला उत्पादन विशेषकर सुन्दर कलाकृतियों की पूर्णता हमें अत्यन्त प्राचीन काल से स्पंदित करती रही है। देश के लाखों कुटीर उद्योग आज भी इस महान और गौरवशाली परम्परा को बनाए रखने में अपना योगदान कर रहे हैं। हमारी आज की तरक्की की इमारत उनकी मजबूत बुनियाद पर खड़ी है। देश के अनेक सिद्धहस्त शिल्पकारों को जिन कलाकृतियों पर राष्ट्रीय पुरस्कार देकर सम्मानित किया जाता है वे सब उनके घर की देहरी के अन्दर की गई श्रममयी साधना का प्रतिरूप ही होती हैं। ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (कापार्ट) ने इस दिशा में प्रोत्साहन देने का जो कार्य किया है वह सराहनीय है। लेकिन कुटीर उद्योग चलाने वाले अधिसंख्य लोग अभी इस बात से नावाकिफ हैं कि उन्हें किस प्रकार और कहाँ-कहाँ से क्या मदद मिल सकती है। गौर तलब बात तो यह है कि दूरदराज के देहाती इलाकों में बड़े-बड़े शहरों की भाँति प्रदर्शनी और प्रशिक्षण शिविर लगाने चाहिए।

भारत में कुटीर उद्योगों का विकास कैसे हो ? यही मुद्दा सिर्फ बहस के लिए ही नहीं होना चाहिए बल्कि मौजूदा कुटीर उद्योगों की हालत में सुधार करने के लिए क्या-क्या कारगर कदम उठाए जाएं इस पर भी ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। क्योंकि कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में आज समस्याएं ही समस्याएं हैं। कच्चा माल, महंगाई और उचित बाजार की अड़चनों के अतिरिक्त भी कुछ बिन्दु ऐसे हैं जिनकी अनदेखी नहीं की जा सकती है। उदाहरण के तौर पर तेजी से बदलती हुई परिस्थितियाँ भी एक हद तक इसके लिए जिम्मेदार हैं। पूर्वी उ.प्र. में एक जनपद है आजमगढ़। मिट्टी के बर्तनों के लिए वहाँ के कुम्भकार दूर-दूर तक प्रसिद्ध हैं लेकिन जिन तालाबों से उन्हें मिट्टी (खास किस्म की) प्राप्त होती थी अब वहाँ पर मछली पालन शुरू हो गया है। तालाब पट गए और शहरी विकास ने उसे निगल लिया। यही हालत म.प्र. में लाख की चूड़ियाँ बनाने वाले कारीगरों की है। उन्हें वन संरक्षण

नीति के कारण असमर्थता का दुःख उठाना पड़ रहा है। राजस्थान में छापे के लिए मशहूर कारीगर पानी के संकट में जूझ रहे हैं। मेरठ में हथकरघे बन्द हो रहे हैं।

इस प्रकार की स्थानीय समस्याओं से जूझते हुए कुटीर उद्योग चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। लेकिन उनमें लघु, मध्यम अथवा बृहत आकार के उद्योगों की भाँति जूझते रहने की सामर्थ्य नहीं होती और अन्त में थकहार कर कुटीर उद्योगों को चलाने वाले परम्परागत काम को त्याग कर किसी दूसरी दिशा में मुड़ जाते हैं। यही वजह है कि अब आसानी से न तो कहीं गांधी जी का चरखा दिखाई देता है और न तेजी से घुमता हुआ चाक क्योंकि हाथ से सूत कातने वालों को मिल के बारीक सूत ने और मिट्टी के बर्तनों को क्राकरी और प्लास्टिक ने बहुत पीछे कर दिया है। रहन सहन में जो बदलाव आ रहा है उसे देखते हुए कुटीर उद्योग के लिए आवश्यक है कि माँग के अनुरूप ही उत्पादन क्षमता का उपयोग किया जाए। इसके अलावा सहकारिता के आधार पर यदि सहकारी समितियों का गठन किया जाए तो उन्हें अपना माल बेचने में सुविधा रहेगी और बाजार में होने वाला उनका शोषण भी रूकेगा।

यह बात साफ है कि कुटीर उद्योग प्रायः वही लोग चलाते हैं जो खुद हाथ के कारीगर होते हैं तथा वे बहुत छोटे स्तर पर खुद मिल जुलकर काम करते हैं। तेन्दू पत्ता से बीड़ी बनाने वाले, पापड़, कचरी बनाने वाली महिलाएं तथा अन्य इसी प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन में लगे निर्बल वर्ग के लोगों को राहत पाने के लिए इन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जोकि बहुत पुराने समय से उनके सामने रही हैं। गाँव-कस्बे के बाजार, हाट और मेलों में ही, उनकी बिक्री का सूरज उगता है और वहीं उनकी साँझ हो जाती है। तैयार माल की खरीद यदि सुपर बाजार आदि के माध्यम से ग्रामीण तथा पिछड़े हुए इलाकों से की जाए तो कुटीर उद्योगों की स्थिति में तेजी से सुधार आ सकता है। अन्यथा बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए कुटीर उद्योगों के संचालकों को अपनी मेहनत और अधिक जारी रखनी होगी।

एच–88, शास्त्री नगर
मेरठ 250005 (उ.प्र.)

देश का असली

ा : देश के बच्चे

कृषकों का मुक्तिदाता-सशक्त लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण

डा. हरिबल्लभ त्रिवेदी

हमारे वर्तमान वित्तमंत्री डा. मनमोहन सिंह ने अपने एक साक्षात्कार में कहा था कि हम अभी तक नियंत्रणों की वकालत करते रहे हैं जिससे विकास तो नहीं हुआ, निष्क्रिय पूंजीवाद हावी हो गया । लोग काम करके, उत्पादन करके अमीर होने की जगह लाइसेंस प्रणाली में उलट फेर करके ही अमीर हो गये । यह कोई कार्यकुशलता नहीं है । डॉ. सिंह का यह कथन भारतीय अर्थव्यवस्था की दुःखती रगों को छूता है । स्वतंत्रता के उषाकाल में कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य से अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक क्षेत्र को दी गई महत्ता तथा उसके संरक्षण हेतु लाइसेंसों एवं परमिटों का ताना-बाना भारतीय अर्थव्यवस्था को अकुशलता ऋणग्रस्तता द्वि-अंकीय मुद्रास्फीति तथा व्यापक भ्रष्टाचार में इस कदर डूबा देगा यह बात देश के तत्कालीन कर्णधारों ने शायद ही सोची हो । विगत चार दशकों में गिरते राजनैतिक स्तर तथा उभरती व्यवस्थागत पेचिदगियों के गहराते आवरण में हमारे ग्रामीण भारत का गरीब तथा जरूरतमन्द आदमी राजनेताओं तथा प्रशासकों की दृष्टि से ओझल होता गया तथा उसकी पीड़ाओं के प्रति विकास कार्यों से जुड़े समूचे प्रशासन तंत्र की संवेदनाओं में कमी आई है ।

अतः लाइसेंस तथा परमिट राज की किले बन्दी तोड़ने के साथ-साथ आजादी के आन्दोलन के तपोवन में पले-बढ़े हमारे प्रधानमंत्री श्री राव को ग्रामीण विकास से जुड़े पूरे प्रशासन तंत्र में संरचनात्मक परिवर्तन लाने की एक और चुनौती का मुकाबला करना होगा ताकि गरीब एवं जरूरत मंद ग्रामीणों के कष्टों के प्रति व्यवस्थागत संवदेना पुर्नस्थापित हो सके ।

भारतीय पेरेस्त्रोइका का अलग चरण—विकेन्द्रीकरण नीति

गांधीजी की कल्पना का रामराज्य वस्तुतः सामाजिक तथा आर्थिक समानताओं के लक्ष्यों के प्रति संवेदनाओं वाला कल्याणकारी राज्य ही था । किसी कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की सार्थकता इस बात में निहित है कि वह देश की समृद्धि का लाभ अपने आम नागरिक तक पहुंचाये तथा राजनैतिक सत्ता में उसकी सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करें ।

हमारे राजनेता, प्रशासक तथा बुद्धिजीवी स्वीकारते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था है, भारत की आत्मा गाँवों में बसती है तथा इस देश की समृद्धि के लिये निहायत जरूरी है कि गाँव के छोटे किसान तथा कारीगर की समस्याओं को केन्द्र में रखकर विकास योजनाओं का ताना-बाना तैयार किया जाये लेकिन विगत चार दशकों की विकास यात्रा के अनुभव कुछ ओर ही कहानी कहते हैं । औद्योगिक दृष्टि से समृद्ध राष्ट्रों की कतार में यथाशीघ्र शामिल होने की लालसा ने हमारी विकास योजनाओं के रूख को केन्द्रीयकरण की तरफ मोड़ दिया जो कमोवेश यथावत है । जब कभी राजनैतिक कारणों से ग्रामीण गरीब को याद करने की नौबत आती है सत्ता पर काबिज प्रत्येक शासक दल विकेन्द्रित आर्थिक विकास के किसी सशक्त मॉडल को अपनाने की बात जोर-शोर से उठाता है । आयोग, समिति अथवा कार्यकारी समूह गठित किया जाता है । इनके प्रतिवेदनों के आधार पर राष्ट्रीय बहस होती है । विधेयक तैयार होते हैं लेकिन प्रस्तावित विकेन्द्रित विकास मॉडल को अपनाने के पूर्व ही विभिन्न कारणों से नया राजनैतिक तूफान उठता है जो नये राजनैतिक चुनावों के साथ शान्त हो जाता है किन्तु अपने पीछे नये सोच, नये नजरिये तथा बदली परिस्थितियों के अनुरूप किसी नये विकेन्द्रित आर्थिक विकास मॉडल की तलाश का किस्सा छोड़ जाता है ।

1972 में 'गरीबी हटाओ' के राष्ट्रीय नारे से आरम्भ हुई देश की विकास यात्रा के दूसरे चरण में पंचायती राज तथा विकेन्द्रित आर्थिक विकास विकल्प की खोज के प्रयासों में तीव्रता आयी है । 1977 में केन्द्र में जनता शासन की स्थापना के पश्चात् बदले राजनैतिक माहौल में कर्नाटक, गुजरात, पश्चिमी बंगाल तथा आन्ध्र प्रदेश में पंचायती राज के अभिनव प्रयोग भी हुए किन्तु फिर भी तलाश जारी रही तथा दिवंगत प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने एतर्दथ देश के विभिन्न अन्चलों में जिलाधीशों की कार्यशालाएं आयोजित करवायीं । इन कार्यशालाओं के प्रतिवेदनों पर राज्यों के मुख्य सचिवों की बैठक में विचार विमर्श किया गया तथा संभावित पंचायती राज

मॉडल की एक रूप रेखा तैयार की गई जिसे समिति के विचारार्थ रखा गया। काफी विचार-विमर्श के बाद तैयार किये गये उस पंचायती राज मॉडल को भी संवैधानिक दर्जा दिलवाने का श्री गांधी का स्वप्न अधूरा ही रह गया तथा देश पुनः राजनैतिक परिवर्तनों के भँवर में फँस गया।

विगत दो वर्षों से हमारी आठवीं पंचवर्षीय योजना अधर झूल में लटकी अप्रैल 92 का इन्तजार कर रही है। तथापि पिछली सरकार द्वारा योजना आयोग से तैयार करवाये गये आठवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में विकेन्द्रित आर्थिक विकास के संदर्भ में की गई निम्न टिप्पणी गौर तलब है।

"आयोजना की प्रक्रिया तथा कार्यान्वयन में संशोधन किया जायेगा, जिससे लोगों को उनकी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में अभिव्यक्ति और दबाव हेतु स्थानीय सरकार की जनतांत्रिक रूप से संचालित संस्थाओं के तथा स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से अधिकाधिक अवसर प्रदान किये जा सकें।"

केन्द्रीयकृत विकास मॉडल का परित्याग क्यों जरूरी ?

सर्वप्रथम, यह कहना तर्कसंगत होगा कि विगत चार दशकों में हमारे देश ने विकास के कतिपय क्षेत्रों में अभूतपूर्व उपलब्धियाँ हासिल की हैं। भीमकाय आधारभूत औद्योगिक कारखानों की स्थापन विशाल पन-बिजली योजनाएं, विस्तृत परिवहन तथा संचार तन्त्र, अग्नि, आकाश तथा पृथ्वी जैसे, प्रक्षेपास्त्रों का विकास तथा इन्सेट उपग्रह प्रक्षेपण जैसे कीर्तिमान हमारे राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक हैं। खाद्यान्न उत्पादन में स्वावलम्बन भी हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान की बेमिसाल उपलब्धि मानी जा सकती है।

लेकिन विकास का केन्द्रीयकृत मॉडल देश में गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी, तथा आर्थिक विषमताओं की समस्याओं का हल नहीं खोज पाया है। उदाहरणार्थ, ग्रामीण भारत में गरीबों की कुल संख्या में 1971 तथा 1987-88 के बीच बढ़ोतरी (257.9 मिलियन से 283.7 मिलियन) हुई है। इसी अवधि में शहरी गरीबों की संख्या 50.4 मिलियन से बढ़कर 77.5 मिलियन हो गई। यह तथ्य और भी ध्यान देने योग्य है कि 1971-1983 के वर्षों की अवधि में ग्रामीण गरीबी की गहनता में औसतन कमी की रफ्तार 1.2 प्रतिशत सालाना थी जो घटकर अगले पाँच वर्षों में (1983-1988) मात्र 0.9 प्रतिशत रह गई है। देश की राष्ट्रीय आय की सालाना वृद्धि पर (1951-71) की अवधि में 3.5 प्रतिशत की लक्ष्मण रेखा पार कर 1981-91 के दशक में यद्यपि 5.4 प्रतिशत के कीर्तिमान को प्राप्त कर गई किन्तु विगत चार दशकों में इस वृद्धि दर में कृषि क्षेत्र का योगदान 3.1 प्रतिशत से कम होकर 2.8 प्रतिशत रह गया है। समष्टिगत दृष्टि से विचार करने पर (1) देश की दो तिहाई आबादी खेती के कार्य में लगी हुई होने के बावजूद भी हमारी राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र का योगदान 60 प्रतिशत से कम है (2) देश की दो तिहाई कृषि जोतें असिंचित वर्ग में आती हैं तथापि कृषि उत्पादन में इनका योगदान मात्र 20 प्रतिशत हैं। (3) 1971-81 के दशक में एक हैक्टेयर से कम आकार की कृषि जोतों वाले कृषकों की संख्या 36 से 56 करोड़ हो गई है तथा (4) उपरोक्त अवधि में, कृषि श्रमिकों की संख्या में 17 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

तीसरे केन्द्रित आर्थिक विकास मॉडल ने हमारी राष्ट्रीय उत्पादन संरचना में अभिजात्यवर्गीय जरूरतों की महत्ता को प्रस्थापित किया है। दूरदर्शन सामाजिक बदलाव का माध्यम बनने के बजाय सुविधाभोगी जीवन से जुड़ी वस्तुओं के विज्ञापन में अपनी क्षमता का दुरपयोग करता रहा है। परिणाम स्वरूप समूचा ग्रामीण समाज प्रदर्शन प्रभाव की गिरफ्त में आता जा रहा है तथा ग्रामीण भारत की बचतें उत्पादन कार्यों में प्रवाहित होने के बजाय अभिजात्य वर्गीय अर्थव्यवस्था को सम्बल प्रदान कर रही हैं।

चौथे केन्द्रीयकृत विकास दर्शन के कारण लाइसेन्स तथा परमिट एवं अनेक आर्थिक नियंत्रणों के जाल में भारतीय अर्थव्यवस्था उलझी है। भ्रष्टाचार के महादानव का जन्म इन्हीं नियंत्रणों के गर्भ में हुआ है। अपनी बारी का इन्तजार किये बिना लक्ष्य प्राप्ति की चाह ने जायज तथा वैधानिक रीतियों को बेमानी बना दिया तथा उपर से नीचे तक की समूची प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्टाचार की वैतरणी में सरोबार हो गई। शायद इस पीड़ा को दिवंगत प्रधानमंत्री श्री गांधी ने महसूस किया था तथा 1985 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के शताब्दी समारोह के अवसर पर उन्होंने सत्ता के दलालों को आड़े हाथों लिया एवं यह स्वीकार करने में भी संकोच नहीं दिखाया कि ग्रामीण विकास की योजनाओं पर खर्च की जाने वाली धनराशि का मात्र 15 प्रतिशत अंश लक्ष्य समूहों (Target Groups) तक पहुंचता है।

पांचवें, ग्रामीण क्षेत्रों में भी विगत चार दशकों में राजनैतिक तथा आर्थिक शक्ति समूह (Power Groups) पनपे हैं। शीर्ष के राजनेताओं से तथा उनके जरिये उच्च प्रशासनिक अधिकारियों के द्वारा ये ग्रामीण शक्ति समूह स्कूल,

अस्पताल, सड़क जैसी आधारभूत सुविधाएं अपने-अपने गाँवों के लिये जुटाने में सफल रहे हैं। इन सफलताओं से ये समूह बिचौलियों की भूमिका में आ गये हैं जबकि मतदाता तथा उनके चुने हुए प्रतिनिधियों के बीच की दूरियां बढ़ी हैं। जनप्रतिनिधि केवल ऐसे ग्रामीण शक्ति समूहों के प्रति जवाबदेह बन कर रह गये हैं।

उपर्युक्त कतिपय व्यवस्थागत तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में यह निष्कर्ष निकालना युक्ति संगत है कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की कल्पना के राम राज्य की स्थापना के लिये राजनैतिक तथा प्रशासनिक सत्ता को जिलास्तर पर प्रस्थापित करना पड़ेगा, क्योंकि स्वच्छ तथा संवेदनशील प्रशासन के प्रासंगिक लक्ष्यों को वर्तमान परिस्थितियों में सत्ता के विकेन्द्रीकरण से ही प्राप्त करना संभव है।

संघीय शासन प्रणाली के अनुरूप विकेन्द्रित विकास मॉडल

भारत विभिन्न जातियों तथा उनकी सांस्कृतिक विरासतों की एक संगम स्थली है। यहाँ के विभिन्न राज्यों की भौगोलिक परिस्थितियों तथा मानवीय संसाधनों की चारित्रिक विशेषताओं में भी भारी अन्तर है। ऐसी स्थिति में पूरे देश के लिये एक सर्वमान्य ग्रामीण विकास के विकेन्द्रीकरण मॉडल की कल्पना एक अव्यवहारिक लक्ष्य होगा। लेकिन विगत चार दशकों की विकास यात्रा से उपजे साँझें अनुभवों को ध्यान में रखते हुए ऐसा महसूस होता है कि विकेन्द्रीकरण के किसी स्वरूप की व्यापक स्वीकृति के लिये उसमें निम्नलिखित विशेषताओं का समावेश होना चाहिए।

1. देश के दो-तिहाई लघु तथा सीमान्त कृषकों, कृषि मजदूरों तथा ग्रामीण कारीगरों की आर्थिक उन्नति के द्वार खोलने की क्षमता।

2. प्रशासनिक अधिकारियों/कर्मचारियों को बहुसंख्यक दरिद्रनारायण के प्रति जवाबदेह बनाने की स्पष्ट व्यवस्था।

3. नीचे के स्तर से लगाकर शीर्ष स्तर तक के जन प्रतिनिधियों (ग्राम पंचायत से लगाकर संसद तक चुने जाने वाले) को आम आदमी की पकड़ से बाहर न जाने देने की क्षमता।

4. अफसरशाही की लम्बवत् प्रगति के अवसरों की लगाम आम आदमी के हाथों में हो।

5. विकास योजनाओं का निरूपण स्थानीय साधनों, जरूरतों तथा लोगों की विकास प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में जिला स्तर पर किये जाने की वैधानिक व्यवस्था।

6. विकास योजनाओं के क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन दायित्व अलग-अलग अभिकरणों को सौंपे जायें ताकि असफलताओं के लिये जिम्मेवार कर्मचारी अपनी अक्षमताओं को छुपाने से महरूम रह सकें।

उपर्युक्त विशेषताओं को समाहित करने वाले विकेन्द्रित आर्थिक विकास के किसी मॉडल क्रियान्यन निम्नांकित वैधानिक व्यवस्थाओं के सम्पादन पर निर्भर करेगी।

(अ) राज्य सरकारों द्वारा राजनैतिक सत्ता का जिलास्तरीय हस्तान्तरण।

(ब) जिला तथा ब्लॉक स्तरीय व्यष्टि नियोजना प्रणाली को अपनाना-विकास केन्द्रों का जिला स्तरीय पिरामिड।

जिलास्तरीय राजनैतिक सत्ता हस्तान्तरण

1991 की जनगणना के अनुसार भारत की 52.2 प्रतिशत आबादी साक्षरता की श्रेणी में आती है। फलतः पश्चिमी ढंग के हमारे लोकतंत्र में राजनीति, व्यवस्था पर हावी होती रही है। राजनैतिक मर्यादाएं बिगड़ती हैं तो हमारी व्यवस्था में भी बिगाड़ आ जाता है और विगत चार दशकों में यही हुआ है। जिलास्तरीय राजनैतिक सत्ता हस्तान्तरण के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये पंचायती राज के त्रिस्तरीय मॉडल को निम्नरूप में अपनाये जाने की जरूरत है।

जिला परिषद

आजादी के प्रथम दो दशकों तक यह कहा जाता रहा है कि जिलाधीश भारत के असली शासक हैं। आज के परिप्रेक्ष्य में यह कहना व्यवहारिक होगा कि जिला प्रमुख तथा जिला परिषदें भारत की असली शासक हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये राज्य सरकारों द्वारा वैधानिक तौर पर सत्ता का हस्तान्तरण जिला परिषदों को कर देना चाहिए।

1. कृषि कुटीर उद्योग, माध्यमिक शिक्षा, विद्युत तथा पेय जल आपूर्ति, स्वास्थ्य सेवाएं तथा परिवहन सेवाओं का निर्देशन तथा संचालन जिला परिषदों द्वारा होना चाहिये।

2. जिला प्रमुख का सीधा चुनाव होना चाहिये तथा राज्य सरकार द्वारा जिला प्रमुख को राज्यमंत्री का दर्जा देना चाहिये।

3. विभिन्न विभागों से सम्बद्ध जिलास्तरीय प्रशासनिक अधिकारी जिला परिषदों के प्रति जवाबदेह बनाये जाने चाहिये।

उनके स्थानान्तरण, पदस्थापन तथा पदोन्नति में जिला प्रमुख की अनुशंसा को अधिक अनुपात में महत्व दिया जाना चाहिये।

जिला मंत्रिमंडलीय परिषद्

(1) जिला प्रमुख को अपनी मंत्री परिषद् गठित करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। इस समिति में दो तिहाई सदस्य ब्लॉक/पंचायत समिति प्रधानों में से तथा शेष सदस्य उस जिले से चुने गये विधायकों में से लिये जाने चाहिये।

(2) मंत्रिमंडलीय समिति को स्थानीय महत्व के सभी विकास कार्यक्रमों के लिये नीति निर्धारित करने तथा दिशा निर्देश देने का वैधानिक अधिकार होगा।

(3) जिलाधीश की भूमिका कमोबेश वही रहेगी जो राज्य स्तर पर मुख्य सचिव की हुआ करती है।

जिला परिषद् के सदस्यों के रूप में जिले से चुने गये सांसद, विधायक, महिला सहवृत सदस्य तो होंगे ही इनके अलावा, जिला प्रमुख को जिले की धरती से जुड़े बुद्धिजीवियों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं में से पांच सदस्य मनोनीत करने का अधिकार होना चाहिये। सक्रिय राजनीति से दूर रहने वाले ये लोग अपने ज्ञान तथा अनुभव से जिलास्तरीय विकास नीतियों की संरचना में रचनात्मक भूमिका निभा सकते हैं।

पंचायत समिति/ब्लाक प्रधान

जातिगत आरक्षण की व्यवस्था, पंचायत समिति अथवा ब्लाक प्रधान के स्तर पर की जानी चाहिये। जनसंख्या के अनुपात में जनजातियों/अनुसूचित जातियों तथा अन्य जातिगत समूहों के बीच ब्लाक प्रधान का पद क्रमवार बदलता रहना चाहिये ताकि जातिगत विद्वेष से बचा जा सके। इस व्यवस्था से जिला स्तरीय मंत्रिपरिषद् में स्वतः बहुसंख्यक वर्गों को आनुपातिक प्रतिनिधित्व मिल सकेगा। फलतः कमजोर वर्गों के हितों के लिये विधायक तथा सांसद की सीटों पर आरक्षण की व्यवस्था में भी परिवर्तन करना सुविधाजनक होगा।

(1) प्रधान का चुनाव सरपंचों द्वारा किया जाना युक्ति संगत है किन्तु प्रधानपद के दावेदार व्यक्ति के लिये उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा तथा किसी सार्वजनिक कार्य/स्वयंसेवी संस्था कार्य से जुड़े होने का तीन वर्ष का अनुभव अनिवार्य होना चाहिये।

(2) प्रधान पद पर कार्य करने वाले व्यक्तियों के आचरण तथा कार्य प्रणाली पर नियंत्रण रखने के लिये "रिकाल व्यवस्था" को अपनाया जाना चाहिये। इस हेतु क्षेत्र के वयस्क मतदाताओं के दस प्रतिशत का हस्ताक्षरित ज्ञापन राज्य सरकार को दिया जाना ही पर्याप्त होना चाहिये।

ब्लाक कार्यकारिणी

ब्लाक स्तर पर कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की निगरानी के लिये दो तीन सरपंचों की अलग समितियां गठित होनी चाहिये। ये समितियाँ स्थानीय अधिकारियों के सहयोग से अपने-अपने विभाग से सम्बद्ध नवीन विकास कार्यक्रमों की रूपरेखा भी तैयार करेंगी जिन पर पंचायत समिति स्तर पर विचार विमर्श के पश्चात् इन्हें जिला आयोजना मण्डल को सुपुर्द कर दिया जायेगा।

पंचायत समिति स्तर पर वे सभी विकास कार्यक्रम तैयार करवायें तथा क्रियान्वित किये जायेंगे जो जिला आयोजना मण्डल द्वारा सौंपे जायेंगे।

ग्राम पंचायत

सरपंच तथा वार्ड पंचों की वर्तमान चुनाव व्यवस्था युक्ति संगत है। लेकिन सरपंच पद के प्रत्याशी के लिये भी सार्वजनिक सेवा अथवा किसी स्वयंसेवी संस्था से जुड़े होने के कम-से-कम दो वर्षों के अनुभव की शर्त होनी चाहिये।

किन्तु, विकेन्द्रीकरण का यह राजनैतिक स्वरूप अपने में अधूरा है जब तक कि उसे विकेन्द्रित आर्थिक संयंत्र का साथ न मिले। इस उद्देश्य हेतु निम्नांकित आयोजना संयंत्र वैधानिक तौर पर स्थापित किया जाना आवश्यक होगा।

1. राज्य वित्त आयोग की स्थापना।
2. जिला आयोजन मण्डल का गठन।

1. राज्य के समग्र वित्तीय स्रोतों में से प्रत्येक जिले की आयोजना के लिये वस्तुनिष्ठ मानदण्डों के आधार पर वित्तीय साधनों का आवंटन जिला परिषदों को किये जाने की वैधानिक व्यवस्था करके इन परिषदों की कार्य क्षमता को संतुष्ट किया जा सकता है। एतदर्थ कर्नाटक राज्य में अपनायी गयी व्यवस्था को स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप छोटे-मोटे संशोधनों के साथ लागू किया जाना चाहिये। वित्त आयोग के जरिये कृषि आय कर को स्थानीय कर रूप में अपनाया जाना राज्य सरकारों के लिये सुविधाजनक हो सकेगा।

2. जिला आयोजना मण्डल एक विशेषज्ञ संस्था होनी चाहिये। जिले से चुने जाने वाले किसी सांसद को इसका उपाध्यक्ष बनाया जाना चाहिये ताकि जिला स्तर से संसद तक आयोजना प्रणाली में सीधे संवाद की संभावना बन सके। आयोजना मण्डल अपने जिले की पंचायत समितियों—ब्लाक्स के लिये भी योजनाएं बनाने तथा क्रियान्वयन प्रक्रिया को स्वयं निर्धारित करने में सक्षम होना चाहिये। जिला प्रमुख के

निर्देशन में कार्य करते हुए यह विशेषज्ञ संस्था स्थानीय संसाधनों तथा विकास आवश्यकताओं में लोगों की विकास प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए, सामंजस्य बिठाने में सक्षम होगी। उसे राज्य आयोजना मण्डल से तकनीकी मार्गदर्शन मिलते रहने से जिला तथा राज्य आयोजना में सामंजस्य बिठाना संभव हो सकेगा।

जिला स्तरीय विभिन्न विभागीय प्रशासनिक अधिकारी आयोजना मण्डल के लिये तकनीकी विशेषज्ञों का कार्य करेंगे। जिला आयोजना में शामिल विभागीय कार्यक्रमों से परिचित रहने के कारण इनके क्रियान्वयन में ये अधिकारी अधिक मुस्तैदी से अपने दायित्वों का निर्वाह कर सकेंगे।

जिला तथा ब्लाक स्तरीय व्यष्टि नियोजन प्रणाली

अपने तकनीकी तथा विशेषज्ञ स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में जिला आयोजना मण्डल से यह अपेक्षा की जायेगी कि वह पंचायत स्तर से जिला स्तर की आयोजना को एक पीरामिडीय स्वरूप में विकसित करें।

विकास की प्रारंभिक इकाई गांव होगा जिसे उच्चस्तरीय सेवाओं की प्राप्ति हेतु अपने आस-पास के किसी ग्राम विकास केन्द्र से सम्बद्ध कर दिया जाना होगा। ऐसे सेवा केन्द्रों पर प्रत्येक गांव की आवश्यकताओं की आपूर्ति का दायित्व रहना चाहिये। ग्राम विकास केन्द्रों को अपने ऊपर के ब्लाक विकास बिन्दुओं से सम्बद्ध (integrated) किया जाना होगा। इस स्तर पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि किसी भी ब्लाक का आकार 20-25 हजार की आबादी से अधिक नहीं होना चाहिये। आवश्यकतानुसार बड़ी पंचायत समितियों को लघु ब्लाक्स में विभाजित भी किया जाना होगा। जनजातीय तथा मरुस्थलीय क्षेत्रों में फैली-बिखरी आबादी होने के कारण इस प्रक्रिया को अपनाना अनिवार्य होगा ताकि किसी ब्लाक के भौगोलिक क्षेत्रफल एवं जनसंख्या में संतुलन बनाये रखा जा सके। सामान्यतया शीर्ष बिन्दु पर जिला विकास केन्द्र रहना चाहिये जो विकास केन्द्रों की निचली कड़ियों की सभी जरूरतों की आपूर्ति के लिये (मानवीय तथा भौतिक संसाधन) उत्तरदायी होगा। बड़े राज्यों में 'जिला विकास केन्द्रों' के दर्जे वाले एक से अधिक केन्द्र भी स्थापित किये जा सकते हैं।

ग्रामीण विकास का पीरामिडीय स्वरूप दरिद्रनारायण को अफसरशाही तथा लालफीताशाही के कागजी घोड़ों के भँवर जाल से मुक्त कराने में सक्षम होगा। किसी भी ग्रामीण को अपनी अधिकांश विकास आवश्यकताओं की आपूर्ति अपने परिचित वातावरण की सीमाओं में ही संभव हो सकेगी। विकेन्द्रीकरण का राजनैतिक स्वरूप उसके प्रति जवाबदेह होने के कारण बाबू अथवा अफसर राज की टालमटोल से नागरिकों के श्रम शक्ति तथा संसाधनों के अपव्यय की संभावनाएं कम होंगी। प्रशासकों तथा राजनेताओं का रुझान जिला स्तरीय व्यवस्थाओं में भागीदारिता निभाने तथा आम लोगों के बीच लोकप्रियता अर्जित करने की तरफ उन्मुख होगा।

जिला प्रमुख जनता के सीधे चुने हुए होने के कारण उनके राजनैतिक भाग्य का फैसला किसी शीर्ष के नेता के सम्पर्क के बजाय जिला स्तर पर कुशल व्यवस्था संचालित करने से होगा। राजनैतिक महत्वाकांक्षा पालने वाले विधायकों तथा सांसदों को भी अपनी क्षमताओं का परिचय अपने मतदाताओं को देना होगा। ये सभी राजनेता तथा उनके मातहत अफसर भ्रष्टाचार तथा शोषण की व्यवस्था को पनपाने अथवा प्रश्रय देना बन्द करके ही अपने अस्तित्व को कायम रख सकेंगे। रिकाल की व्यवस्था की तलवार के लटके रहने से प्रधान अथवा जिला मंत्रिमंडलीय परिषद् लोगों की विकास जरूरतों तथा स्वस्थ एवं स्वच्छ स्थानीय प्रशासन देने के प्रति अधिक संवेदनशील बनेंगी। जिला स्तरीय व्यवस्था में सुधार का असर राज्य स्तर पर भी प्रतिबिम्बित होगा।

हमारी अस्वस्थ तथा ऋणग्रस्त अर्थव्यवस्था की तंदुरुस्ती के लिये वर्तमान सरकार द्वारा वित्तीय औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्रों में किये गये संरचनात्मक परिवर्तन निस्संदेह स्तुत्य हैं, लेकिन देश की आन्तरिक प्रशासनिक व्यवस्था को चुस्त तथा संवेदनशील बनाना एक दूसरी जबरदस्त चुनौती है। सही तथा सशक्त लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को क्रियान्वित करके ही देश इस दूसरी चुनौती का मुकाबला कर सकता है। यदि देश के दरिद्रनारायण की आस्था को हमारी लोकतंत्रीय व्यवस्था में बनाये रखना है तो सरकार को चाहिये कि वह इस दिशा में अविलम्ब सक्रियता दिखाये।

व्याख्याता (चयनित वेतन)
अर्थशास्त्र एम.एल. वर्मा
राजकीय स्वायत्तशासी
महाविद्यालय भीलवाड़ा (राज.)

लघु एवं कुटीर उद्योगों का ग्रामीण विकास में महत्व

रजनी

भारत कृषि प्रधान व अत्यधिक ग्रामीण जनसंख्या वाला देश है । भारत जैसे विकासशील देश में कुटीर व लघु उद्योगों का विशेष महत्व है । तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या व श्रम शक्ति तथा पूंजी के अभाव के कारण, भारत में ऐसे सभी उद्योगों का महत्वपूर्ण स्थान है, जिनमें कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, सहायक उद्योग तथा कृषि से सम्बन्धित उद्योग समाविष्ट हैं । 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है और कृषि मानसून पर निर्भर है, जो निश्चित नहीं है, इसीलिए गाँवों में बेरोजगारी बहुत है । ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने एवं ग्रामीण विकास के लिए लघु व कुटीर उद्योगों का विकास किया जाना आवश्यक है, क्योंकि एक अनुमान के अनुसार कृषि में लगी जनसंख्या का 25% भाग अदृश्य रूप से बेकार है । सातवीं योजना के शुरू में बेरोजगारी की संख्या 2.66 करोड़ थी ।

कुटीर उद्योगों का वर्गीकरण

लघु एवं कुटीर उद्योगों का ग्रामीण व शहरी आधार पर वर्गीकरण किया गया है । (1) ग्रामीण व कुटीर दो वर्गों में विभाजित है ।

(i) कृषि के सहायक ग्रामीण कुटीर उद्योगों में वे सब उद्योग शामिल हैं, जो किसानों द्वारा सहायक धन्धों के रूप में किये जा सकते हैं, जैसे - करघों पर बुनाई, रेशम के कीड़े पालना, टोकरियां बनाना, गाय भैंस पालना, आटा पीसना आदि ।

(ii) ग्रामीण कौशल सम्बन्धी कुटीर उद्योग में हस्तकौशल के धन्धे आते हैं जैसे - मिट्टी के बर्तन बनाना, घानी से तेल निकालना, चमड़े का उद्योग, लुहार तथा सुनार का काम, गाड़ियां और नावें बनाने का काम आदि ।

(2) शहरी कुटीर उद्योग - शहरी कौशल धन्धों में परम्परागत कुशलता और कारीगरी होती है जैसे - बनारसी और चन्देरी साड़ियाँ बनाने के धन्धे, खिलौने बनाना, कागज के फूल बनाना, हैन्डलूम आदि ।

कुटीर उद्योगों का महत्त्व

हमारे देश में कुटीर उद्योगों की उन्नति का अपार महत्व है । भारतीय अर्थव्यवस्था की कुछ विशेषताएं इस प्रकार की हैं जिनके कारण कुटीर उद्योगों का विकास करना हमारे लिए एक मौलिक आवश्यकता की बात है । कृषि पर अत्याधिक निर्भरता, जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि बड़े पैमाने के उद्योगों का विदेशों में बाजार प्राप्त करने के कम अवसर मिलना । जनता की अत्याधिक गरीबी, जीवन व्यतीत करने का ग्रामीण ढंग ।

भारत में कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास का महत्व समझा जा सकता है । दूसरी योजना में 70 लाख व्यक्ति बेकार थे । सातवीं योजना के शुरू में 2.66 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार थे । यदि हम वर्तमान बड़े उद्योगों को चार पाँच गुणा बढ़ा भी दें तो भी देश के अन्दर फैली हुई बेकारी की समस्या हल नहीं हो सकती । इसका अर्थ यह हुआ कि बेकारी की कठिन समस्या का एक मात्र प्रभावपूर्ण हल बड़े पैमाने के उद्योगों के साथ-साथ कुटीर एवं लघु उद्योगों की उन्नति का शीघ्र एवं सतत् प्रयास करना है । बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास से देश की पूँजी और आय कुछ थोड़े से ही लोगों के हाथ में केन्द्रित होती है किन्तु कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास होने से अधिक लोगों को रोजगार मिलता है, जिससे राष्ट्रीय आय का अधिक न्यायोचित वितरण होता है, साथ ही कारीगरों का उतना शोषण भी नहीं होता जितना कि कारखानों के मजदूरों का होता है ।

वर्तमान स्थिति

आजादी के एक साल बाद ही सन् 1948 में देश में कुटीर उद्योग बोर्ड की स्थापना हुई तथा 1955 में लघु उद्योग निगम की स्थापना हुई । 1948 में पहली बार स्वतन्त्र भारत की सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा की । इस नीति को क्रियान्वित करने के लिए औद्योगिक (विकास एवं नियमन) अधिनियम, 1951 पारित किया गया ।

लघु उद्योगों में कम पूंजी निवेश, रोजगार पैदा करने की क्षमता तथा उद्योगों के ग्रामीण तथा अर्ध-शहरी क्षेत्रों में छितराव के गुणों को देखते हुए उनके विकास को प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में उच्च प्राथमिकता दी गई है । इसे नये 20 सूत्री कार्यक्रम में शामिल कर लेने से इसका महत्व और भी बढ़ गया, क्योंकि इस कार्यक्रम में हस्तशिल्प, हथकरघा, लघु तथा

ग्रामीण उद्योगों के उत्थान तथा उनकी तकनीक के आधुनिकीकरण पर जोर दिया गया । लघु उद्योगों ने पिछले दशक में असाधारण प्रगति से देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण तथा विशेष स्थान बना लिया है । कुल औद्योगिक उत्पादन का लगभग 49% उत्पादन ग्रामीण और लघु उद्योग करते हैं । लघु उद्योग विकास संगठन के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों का योगदान 33% है । अनुमान है कि लघु उद्योगों ने 1983-84 में 41,620 करोड़ रुपये मूल्य की बस्तुओं का उत्पादन किया । सातवीं योजना में लघु उद्योगों के उत्पादन का लक्ष्य 88,220 करोड़ रुपये तथा रोजगार का लक्ष्य 1 करोड़ 13 लाख व्यक्ति और निर्यात का लक्ष्य 4140 करोड़ रुपये रखा गया । लघु उद्योगों को इकाइयों की संख्या 1978-79 में सिर्फ 7.34 लाख थी । वर्ष 1987-88 तक यह बढ़कर 15.92 लाख हो गई ।

लघु उद्योगों की यह विशेषता है कि उनमें पूंजी कम लगती है । ये श्रम-प्रधान होते हैं, इसलिए इनमें थोड़ी पूंजी लगाकर अधिक व्यक्तियों को रोजगार मुहैया कराया जा सकता है । नई औद्योगिक नीति की घोषणा अनुसार अति लघु इकाइयों की पूंजी निवेश सीमा 2 लाख रुपये से बढ़ाकर 5 लाख रुपये कर दी गई है ।

लघु उद्योगों को आगे बढ़ाने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों के विभिन्न संगठन कार्यरत हैं, इनमें मुख्य लघु उद्योग विकास संगठन 26 लघु सेवा संस्थानों, 32 शाखा संस्थानों, 40 विस्तार केन्द्रों, 4 क्षेत्रीय परीक्षण केन्द्रों, 4 संक्रिया व उत्पाद विकास केन्द्रों के माध्यम से लघु उद्योगों को व्यापक रूप से परामर्श सेवायें, तकनीकी, प्रबन्धकीय, आर्थिक व विपणन सहायता देता है । भारतीय रिजर्व बैंक ने बैंकों को सलाह दी है कि वे अपने कुल ऋणों का कम से कम 40 प्रतिशत प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को उपलब्ध करायें ।

कुटीर उद्योगों में सहकारिता का महत्व

हमारी लोक-कल्याणकारी सरकार ने नियोजन काल में देश में लघु और कुटीर उद्योगों के नियोजित विकास का संकल्प किया है । कुटीर उद्योगों के प्रसार व स्थापना हेतु कई साधन सुविधाएं और आधारभूत सक्षम ढांचा जिला, राज्य और राष्ट्रीय स्तर तक स्थापित किया गया है । कुटीर उद्योग का क्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत है । इसमें समाज के हर वर्ग के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं । ग्रामीण क्षेत्रों में लोहारी, सुनारी, कुम्हारी, चूना उत्पादन, रेशम उद्योग, मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन, मधुमक्खी पालन, बांस ताड़, नारियल, जूट आदि से निर्मित उत्पाद आदि के क्षेत्र में सहकारी समिति बनाकर लाभ अर्जित किया जा सकता है ।

वर्तमान में देश के राज्यों में हजारों सहकारी समितियाँ शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं । जून 1987 तक देश में 54,112 औद्योगिक सहकारी समितियाँ कार्यरत थीं । कुटीर उद्योग स्थापित करने के लिए अलग-अलग परिवार के दस उद्यमी संगठित कर एक निश्चित वस्त्र का उत्पादन करने हेतु सहकारी समिति गठित की । इसके लिए प्रत्येक जिले में उपसहायक पंजीयक, सहकारी समितियाँ, जिला सहकारी संघ और जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक कार्यरत हैं । उनसे सहयोग व मार्गदर्शन लिया जा सकता है ।

लघु औद्योगिक इकाइयों की रुग्णता

एक ऐसी अर्थव्यवस्था जहाँ पर पूंजी की कमी हो, वहाँ औद्योगिक रुग्णता एक चिन्ता का विषय है, जब कोई उद्योग रुग्ण होता है, तो श्रम शक्ति व्यर्थ होती है । किसी कारखाने को रुग्ण तब माना जाता है, जब उसमें एक साल तक नकद घाटा हो तथा चालू वर्ष में और आगामी वर्ष में भी घाटा होने की संभावना हो और उसके वित्तीय ढाँचे में असन्तुलन बना हुआ हो ।

यह रुग्णता लघु उद्योगों में प्रमुख रूप से विद्यमान है । इन रुग्ण इकाइयों की केवल संख्या में वृद्धि नहीं हो रही है बल्कि बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋण जो कि अभी तक चुकाया नहीं जा सकता है कि मात्रा बढ़ती जा रही है । केवल दो वर्षों में रुग्ण इकाइयों से तथा इनके ऋणों में 65 प्रतिशत की वृद्धि हो गई । 1988 में गैर-लघु औद्योगिक इकाइयों को कुल बैंकों द्वारा दिए गए ऋण की मात्रा 5564 करोड़ रुपये थी, जबकि इसकी तुलना में लघु औद्योगिक इकाइयों को इस अवधि में बृहत ऋण की मात्रा 2141 करोड़ रुपये थी ।

नयी आयात-निर्यात नीति

केन्द्र सरकार ने 13 अगस्त को नई आयात-निर्यात नीति की घोषणा की है । इसमें आयात लाइसेंसों में भारी कटौती की गई है । नयी आयात-निर्यात नीति में एस.टी.सी. और एम.एम.टी.सी. का 20 वस्तुओं के विषय में आयात करने और 16 मदों का निर्यात करने का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया है । अनेक ऐसी मदें जो खुला सामान्य लाइसेन्स (OGL) नीति के अन्तर्गत हैं, उन्हें इस सूची से हटाकर सीमित अनुमति सूची में लाया गया है । नई नीति के अन्तर्गत संसाधित चाय, काफी, डिब्बाबन्द सब्जी, मछलियों, फलों, पौधों, दवाओं,

सभी इलैक्ट्रोनिक उत्पादों और उच्च तकनीक उत्पादों के लिए 10 प्रतिशत अतिरिक्त आयात सुविधा देने का निर्णय किया गया ।

लघु उद्योगों के लिए नई नीति

औद्योगिक और आयात-निर्यात नीति के बाद केन्द्र सरकार ने लघु औद्योगिक नीति की घोषणा की है । अति लघु उद्योगों के लिए पूंजी-निवेश की सीमा 2 लाख रुपये से बढ़ाकर 5 लाख रुपये कर दी गई है । इसके अलावा इसमें अन्य औद्योगिक इकाइयों को लघु उद्योगों में पूंजी-निवेश की अनुमति दी गई । भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक को सारे देश में फैलाने का वादा किया गया और लघु उद्योगों से सम्बन्धित नियमों और प्रक्रियाओं को कई प्रकार से सरल बनाया गया है । लघु उद्योगों, सहायक उद्योगों और निर्यातोन्मुखी इकाइयों में पूंजी निवेश में क्रमशः 60 लाख, 75 लाख की पूर्व घोषित वृद्धि जारी रहेगी । नीति के अनुसार लघु उद्योगों के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है । लघु क्षेत्र को भूमि आवंटन, बिजली जैसे विशेष लाभ केवल एक बार मिलेंगे । अति लघु उद्योग क्षेत्र को यह लाभ निरन्तर मिलता रहेगा ।

राष्ट्रीय इक्विटी कोष योजना का क्षेत्र विस्तृत किया जाएगा और इसके तहत 10 लाख तक की परियोजनाओं को 15 प्रतिशत तक सहायता दी जायेगी । 20 लाख तक की परियोजनाओं के लिए बैंक के एक अधिकारी के स्तर पर आसान मंजूरी की व्यवस्था होगी । लघु क्षेत्र में पर्याप्त ऋण की व्यवस्था के लिए एक एजेन्सी गठित की जायेगी ।

नई लघु औद्योगिक नीति के अनुसार लघु क्षेत्रों, विशेषतः अति लघु उप-क्षेत्र को स्वदेशी एवं आयातित कच्चे माल का उपयुक्त एवं उचित वितरण सुनिश्चित किया जाएगा । नीति-निर्माण इस प्रकार से किया जायेगा कि नई इकाइयों के प्रवेश में किसी प्रकार की बाधा न आये ।

म.न. 1302 गली कूचा हीरालाल
कुण्डेवालान, अजमेरी गेट
दिल्ली 110006

क्या आप जीवन की विविधताओं में विश्वास रखते हैं ?

यदि हाँ
तो
बिहार आइए

गौरवशाली अतीत और विकासशील वर्त्तमान के साथ नैसर्गिक सुषमा का धनी बिहार आपको पर्यटन का बहुआयामी सुख देगा ।

यदि आप धार्मिक व्यक्ति हैं तो सभी धर्मों का केन्द्र भी है बिहार ।

यदि आप प्रकृति के पुजारी हैं तो फिर छोटा नागपुर आइए और यहां के वनस्थलियों, पर्वत श्रृंखलाओं, जल प्रपातों जैसे हुंडरू, नेतरहाट, राजरप्पा आदि की सैर का मखमली आनन्द लीजिए और रोमांच पसंद करें तो हजारी बाग और बेतला के घने और विशाल राष्ट्रीय उद्यानों में वन्य जीवों के बीच विचरिए ।

बिहार का पर्यटन यानि गागर में सागर । यहां के सीधे-सादे लोग, यहाँ की संस्कृति, यहां की कला, यहाँ के उत्सव आपको बरबस बांध लेंगे । आप एक बार बिहार आइए, आप यहाँ बार-बार आना चाहेंगे ।

राज्य सरकार ने बिहार पर्यटन को उद्योग घोषित किया है और पर्यटन संबंधी हर सुविधा आपको उपलब्ध कराने के लिए कृत संकल्प है ।

सम्पर्क करें:—
पर्यटक सूचना केन्द्र, मजहरुलहक पथ, पटना, दरभंगा
दूरभाष संख्या 25295
पर्यटक सूचना केन्द्र, कचहरी परिसर, रांची
दूरभाष सं. 20426
सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग द्वारा प्रसारित ।

जोकाई/13-91-92

गांवों के विकास में ही भारत का विकास है : गांधीजी

देवकी

"यह देखकर दुख होता है कि आप लोगों में से अधिकांश लोग या तो शहरों से आए हैं या शहरी जीवन के अभ्यस्त हैं। जब तक आप अपना मन शहर से हटाकर गांवों में नहीं लगाएंगे तब तक गांवों की सेवा आप नहीं कर सकते। आपको यह भी समझ लेना चाहिए कि हिन्दुस्तान गांवों से बना है, शहरों से नहीं और जब तक आप ग्राम जीवन को और गांवों के हस्त उद्योगों को पुनर्जीवित नहीं करते तब तक उनका पुनर्निर्माण नहीं कर सकते। हमारे उन गांवों में जीवन का प्रवाह रुद्ध हो गया है और वे मृत प्रायः हैं, औद्योगिकरण उनमें प्राणों का संचार नहीं कर सकता। अपनी झोपड़ी में रहने वाले किसान को जीवन तभी मिलेगा, जब उसे अपने घरेलू उद्योग फिर से वापस मिलेंगे और जब अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए वह गांवों पर ही निर्भर रहेगा, शहरों पर नहीं, जैसा कि आज विवश होकर उसे करना पड़ रहा है। इस आधारभूत सिद्धान्त को यदि आप आत्मसात नहीं करते तो ग्राम-पुनर्निर्माण के उस कार्य में लगने वाला आपका सारा समय व्यर्थ जाएगा।" ये उद्‌गार महात्मा गांधी ने 6 मई 1939 को वृंदावन में ग्राम सेवकों को सम्बोधित करते हुए व्यक्त किये थे।

गांधीजी का उपर्युक्त कथन अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है इसमें निम्न बातों का संकेत मिलता है –

1. भारत के विकास के लिए गांवों का विकास जरूरी है।
2. गांवों के विकास की योजनाएं शहरों के वातानुकूलित भवनों में बैठकर नहीं बनाई जा सकती।
3. शहरी जीवन की समस्याएं एवं उनका समाधान गांव के लोगों के द्वारा ही हो सकता है। शहर के लोग गांवों में जाकर अधिक सार्थक उपयोगिता नहीं दिखा सकते हैं।
4. औद्योगिकरण प्रगति के लिए अनिवार्य है लेकिन उससे गांवों के विकास में अधिक मदद नहीं मिलती है।
5. गांवों का विकास हस्त उद्योगों व कुटीर उद्योगों से ही सम्भव है और हमें नई तकनीक का उपयोग इन्हीं के विकास के लिए करना चाहिए।

गांधीजी इस बात को महसूस करते थे कि औद्योगिकरण से यद्यपि शहरों की तरक्की हो सकती है और हम विश्व के विकासशील देशों की पंक्ति में खड़े हो सकते हैं, लेकिन इससे गांवों की सर्वांगीण उन्नति नहीं हो सकती है और गांवों की उन्नति के बिना भारत की उन्नति की बात सोचना महज पानी में कागज की नाव चलाना है। गांधीजी इस बात को समझते थे और इसीलिए उनका मानना था कि जब तक भारत के प्रत्येक गांव के प्रत्येक हाथ को रोजगार नहीं मिलता और जब तक उनको उनके लघु उद्योग वापस नहीं मिलते, तब तक गरीब किसान खुशहाल नहीं बन सकता। अगर आप कुछ लाख लोगों को वातानुकूलित भवन, रंगीन टेलिविजन, फ्रिज और अतिविचित्र ध्वनि यंत्रों तथा बुढ़ापे में जवानी का आभास कराने वाली प्रसाधन सामग्री को मुहैया कराके यह समझते हैं कि हमारा देश सभ्यता की दौड़ में किसी से पीछे नहीं है तो आप उन करोड़ों लोगों के साथ न्याय नहीं कर रहे हैं जिन्हें दो वक्त भर पेट रोटी भी नहीं मिल रही है। सभ्यता के प्रतीक कल कारखाने और आधुनिक हथियार नहीं हैं, बल्कि यह है कि प्रत्येक मनुष्य सम्मानपूर्वक जी सके और अपने परिवार को दो वक्त की रोटी इज्जत के साथ उपलब्ध करा सके। शेष विश्व के संदर्भ में यह बात चाहे ठीक न बैठती हो लेकिन भारत के संदर्भ में यह सत्य है। हमारा देश गांवों का देश है। गांवों में खुशहाली है तो शहरों में भी जीवन है। आपने देखा होगा जब पानी नहीं बरसता है तो बड़ी-बड़ी कंपनियों के शेयरों के भाव लुढ़क जाते हैं ऐसा क्यों? पानी बरसने से शहर के कारखानों का क्या सम्बन्ध है। इससे यह स्पष्ट है कि यदि खेती की पैदावार में कमी आती है तो उसका प्रभाव हमारे सभी उद्योगों पर पड़ता है अतः औद्योगिकरण की आधारशिला गांवों के विकास पर ही निर्भर करती है। यही कारण था कि बापू ने गांवों के विकास पर सर्वाधिक जोर दिया था।

स्वाधीनता के बाद यद्यपि ग्रामीण विकास के लिए अनेक कार्यक्रम चलाए गए लेकिन उनका अपेक्षित परिणाम नहीं निकला। इसका एक कारण तो यह रहा कि योजनाएं उन लोगों के द्वारा बनाई गईं जिन्होंने गांवों के माहौल को देखा तक नहीं, उसे समझना तो दूर की बात है। दूसरा कारण यह भी था

कि गांधीजी के दृष्टिकोण और नेहरूजी के दृष्टिकोण में बुनियादी अंतर था। नेहरूजी भारत के विकास के लिए भारी-भरकम मशीनों व बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना को आवश्यक मानते थे और एक सीमा तक यह सही भी था क्योंकि इसी नीति के परिणामस्वरूप हम आज विकासशील देशों की अग्रिम पंक्ति में खड़े हैं लेकिन गांधीजी कुटीर उद्योग और हस्तशिल्प उद्योग को ग्रामीण विकास के लिए सर्वाधिक महत्व देते थे क्योंकि मूलतः वे मानते थे कि बिना गावों का विकास किए भारत का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं है। आज जब विदेशी मुद्रा संकट और तेल की समस्या हमारे सामने आई तो हमें विवश होकर अपनी औद्योगिक नीतियों पर गहराई से विचार करना पड़ा। आज सरकार कुटीर उद्योगों तथा हथकरघा उद्योगों पर जो इतना जोर दे रही है तो उसके मूल में गांधी विचारधारा की सार्थकता ही सिद्ध हो रही है।

ऐसा नहीं है कि सरकार ने ग्रामीण विकास की अवहेलना की हो। पिछले वर्षों में हमने गांवों के विकास के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, लघु कृषक विकास एजेंसी तथा पांचवी पंचवर्षीय योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम भी प्रारम्भ किया गया। इसके अतिरिक्त सूखे की आशंका वाले क्षेत्रों के लिए "रेगिस्तान विकास कार्यक्रम,", "समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, "स्वरोजगार कार्यक्रम" चलाए गए। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत सरकारी आंकड़ों के अनुसार काफी कुछ किया जा चुका है।

भूमि सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत भी काफी कुछ किया गया है। खेती करने की बिचौलिया प्रथा को समाप्त किया गया, तथा बंजर भूमि को भूमिहीनों में बांटा गया, पट्टेदारों को मालिकाना हक दिया गया और चकबंदी व्यवस्था को प्रभावी ढंग से लागू किया गया।

इतना सब होने के बावजूद गावों के माहौल में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया है। गांव आज भी अपनी आम जरूरतों के लिए शहरों पर निर्भर है। गांव के लड़के आज भी शहरी लड़कों की अपेक्षा पिछड़े हैं। गांवों में आज भी जात-पांत अपनी चरम सीमा पर है। हम केवल आंकड़ों की गिनती गिना कर अपने को बहला रहे हैं। आजादी के बाद दो बातें खुलकर सामने आई हैं, पहली, जो अमीर थे, चाहे वे गांव के हो या शहर के, अधिक अमीर बने हैं और जो गरीब थे वे अपेक्षाकृत और अधिक गरीब हो गए हैं। कुछ लोग यह दलील देकर विकास को परिभाषित करना चाहते हैं कि आज सब्जी वाले के पास भी ट्रांजिस्टर है, झुग्गी वाले के पास भी रंगीन टेलिविजन है लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू अत्यधिक घिनौना है। हम एक ऐसे समाज में जी रहे हैं जिसमें हम अत्यधिक मानसिक दबाव और कुंठाओं के बोझ तले दबे हैं। विकास के नाम पर हमारी मानसिकता को इस प्रकार विकसित कराया गया है कि हम चाहे भूखे पेट सो जायें लेकिन घर में टी.वी. अवश्य रखेंगे क्योंकि आज टी.वी., फ्रिज, रेडियो आदि वस्तुओं को सामाजिक हैसियत का माप-दण्ड मान लिया गया है। इस प्रकार की मानसिकता क्यों विकसित हुई हममें से शायद ही किसी ने इस पर गहराई से विचार किया हो।

गांधीजी भविष्य द्रष्टा थे, उन्होंने जो विचार हमें दिए उनमें भारत का भविष्य विद्यमान था। वे समस्या के मूल कारणों की खोज करके उसका समाधान करने में विश्वास रखते थे न कि तात्कालिक समाधान में। आज जो हमारी अर्थव्यवस्था लड़खड़ा रही है उसके मूल में यदि हम झांकें तो स्पष्ट होगा कि यह हमारी दीर्घकाल से चली आ रही अपरिपक्व औद्योगिक नीति का ही परिणाम है। हमने तकनीकी के आयात पर विशेष जोर न देकर कल पूर्जों के आयात को भारी छूट दे दी। इसका परिणाम यह हुआ कि चंद पूंजीपतियों ने विदेशों से कलपूर्जों का आयात करके महंगे दामों पर उनसे बनी वस्तुएं बेचनी शुरू कर दी। इसमें उनकी लागत कम थी और मुनाफा अधिक। इसीलिए उन वस्तुओं का निर्माण हमारे देश में नहीं हो सका। अगर हमने उद्योग के साथ-साथ तकनीक के विकास को आवश्यक बनाया होता तो आज हमारा देश इन वस्तुओं के उत्पादन में आत्मनिर्भर बन चुका होता और इससे दो फायदे होते पहला हम उस तकनीक का प्रयोग प्रत्येक गांव के विकास के लिए करते, दूसरा उससे रोजगार के अवसर अधिक बढ़ते।

गांधीजी की यही सोच थी। वे मशीनों के विरोधी नहीं थे, वे चाहते थे कि हमारा देश वैज्ञानिक उन्नति करे लेकिन वे इस पक्ष में नहीं थे कि मशीनों के बल पर एक पूंजीपति सौ व्यक्तियों को बेरोजगार करके सारा मुनाफा अपनी जेब में डाल ले। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे देश की जनसंख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है और हमारे देश की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि हम चाह कर भी पूरी तरह पांव नहीं फैला सकते हैं क्योंकि तीन ओर समुद्र है चौथी और

विशाल हिमालय, अतः उस विशाल जनसंख्या के भरण पोषण के लिए हमारे पास एक ही उपाय है कि हम गांवों का सही ढंग से विकास करें तथा कृषि कार्य में नई तकनीक का इस्तेमाल करें ।

कृषि के विकास के लिए अभी तक जितने भी प्रयत्न किए गए हैं वे पर्याप्त नहीं हैं । केवल ट्रैक्टर से खेत जोतना और देशी खाद की जगह यूरिया का प्रयोग ही काफी नहीं हैं बल्कि किसानों को खेती की वैज्ञानिक विधि की पूरी जानकारी कराना भी आवश्यक है ।

आज का किसान जिन चीजों के लिए शहरों पर निर्भर है उनकी तो कीमतें आसमान छू रही हैं लेकिन किसान की फसल कौड़ियों के दाम बिकती है । इसका परिणाम यह होता है कि गांव का व्यक्ति अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए शहर की तरफ भाग रहा है । इससे शहरों की आबादी का घनत्व बढ़ रहा है । वहीं दूसरी और खेती की अवहेलना भी हो रही है । गांधीजी को इस स्थिति का पूर्वाभास था इसीलिए उन्होंने भारत के विकास के लिए लघु उद्योगों पर अत्यधिक जोर दिया था । उन्हें पता था कि जब तक गांव का व्यक्ति अपनी जरूरतों के लिए गांवों में ही आत्म-निर्भर नहीं हो जाता तब तक गांवों का विकास सम्भव नहीं है और बिना गांवों के विकास के भारत का विकास स्वप्न मात्र है । आज यदि ग्रामीण व्यक्ति तेल-साबुन से लेकर कापी-किताब एवं कपड़े लत्ते के लिए स्वयं आत्मनिर्भर बन जाए तो वह अपने परिश्रम का भरपूर फायदा उठा सकता है । यह बात यदि गांव के किसान की समझ में आ जाए तो वह भी मिल मालिकों की तरह अपने उत्पादन का मुंह मांगा दाम ले सकता है ।

गांवों के सर्वांगीण विकास में सर्वाधिक बाधक है ग्रामीण एवं शहरी सभ्यता का मूल भूत अंतर । शहर के क्रीम पाउडर एवं गांव के धूल-धक्कड़ ने नई पीढ़ी को शहरों की चाकचौंध की तरफ अत्यधिक आकर्षित किया है । शहरों का विकास जिस गति से होता है गांवों का विकास उस गति से नहीं हो पा रहा है । यदि हम किसी प्रकार शहर की चमक-दमक गांवों में ला सकें तो आने वाली पीढ़ी निश्चित ही कृषि के प्रति अधिक उत्साह दिखाएगी । इसके लिए निम्न सुझावों पर विचार किया जाना चाहिए ।

- गांवों की बसावट भी शहरों की तरह व्यवस्थित व क्रमबद्ध होनी चाहिए ।
- गांवों में भी सुलभ शौचालयों का निर्माण कराया जाना चाहिए ।
- पशुओं के रख-रखाव की व्यवस्था इस प्रकार से हो कि गांव की गलियां और सड़कें साफ-सुथरी रहें ।
- प्रत्येक गांव में पक्की सड़कें व गलियों का प्रावधान हो ।
- मनोरंजन के आधुनिक साधन गांवों के आस-पास ही उपलब्ध हों ।
- खेती को बड़े-बड़े फार्म का रूप दे दिया जाय ताकि एक व्यक्ति की जमीन एक ही जगह सुव्यवस्थित हो ।
- चकबंदी प्रथा में सुधार होना चाहिए और किसी भी हालत में जमीन सम्बन्धी विवाद एक वर्ष से अधिक नहीं चलना चाहिए ।
- गांवों में फैसले ग्राम पंचायतों के द्वारा ही अंतिम रूप से किए जाने चाहिए ।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पर्याप्त शोधकार्य किया जाना चाहिए ।
- नवीनतम टेक्नोलोजी का उपयोग कृषि के विकास के लिए किया जाना चाहिए ।
- भारत की प्रमुख नदियों के मार्गों में प्रत्येक 100 कि.मी. के फासले पर कृत्रिम झीलों का निर्माण किया जाना चाहिए ताकि बाढ़ के समय वहां पानी इकट्ठा किया जा सके व उसका उपयोग बाद में सिंचाई के लिए किया जाए ।
- ग्रामीण सभ्यता एवं वातावरण के प्रति नई पीढ़ी में विभिन्न प्रचार माध्यमों से आकर्षण पैदा किया जाए ताकि वह कृषि कार्य में गहरी रूचि लें ।

अभी कुछ समय पूर्व तक हम यह कहते थे कि भौतिकता एवं अध्यात्म में सामंजस्य होना चाहिए । कोरा अध्यात्म या केवल भौतिकवाद हमें जीवन की समग्रता नहीं दिला सकता है । अब हम पुनः वही भूल कर रहे हैं । केवल वैज्ञानिक उपलब्धि या केवल कृषि कर्म हमें प्रगति नहीं दिला सकता है बल्कि दोनों के सामंजस्य से ही एक सम्पन्न व आत्मनिर्भर भारत का निर्माण सम्भव है ।

158 एच-19, सैक्टर-7,
रोहिणी, दिल्ली-110085

मध्यप्रदेश का हथकरघा उद्योग : स्थिति और समाधान

डा०एम०एल०सोनी

मध्यप्रदेश राज्य का हथकरघा उद्योग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रदेश में 6.61 करोड़ व्यक्ति निवास करते हैं। प्रदेश की उक्त जनसंख्या पूर्ण कालिक हथकरघा उद्योग में प्रत्यक्षरूप से संलग्न हैं। प्रदेश में में कुल 53901 हथकरघे हैं जिनमें से चालू हथकरघों की संख्या मात्र 44132 है। इन चालू हथकरघों से वर्ष 1990-91 में 70.75 मिलियन मीटर कपड़ा उत्पादित किया गया। हथकरघा उद्योग प्रदेश का सबसे प्राचीन गृह उद्योग है। प्रारम्भिक समय में हथकरघों की संख्या बहुत अधिक थी किन्तु अंग्रेज व्यापारियों व उद्योगपतियों द्वारा सूती कपड़ों की मिलों की स्थापना के बाद इनकी संख्या में निरन्तर कमी आती गई।

केन्द्रीयकरण का कारण

हथकरघा इकाइयों का केन्द्रीयकरण प्रमुख रूप से बुरहानपुर, जबलपुर, सिवनी, रायपुर, बस्तर, छिन्दवाड़ा, गुना (चन्देरी), बिलासपुर एवं सीधी जिलों में हो गया है। इसके अतिरिक्त ग्वालियर, सिरोंज, पढाना एवं महेश्वर आदि स्थानों पर भी कुछ इकाइयां संचालित की जा रही हैं। हथकरघा इकाइयों के उक्त स्थानों पर केन्द्रित होने का कारण यह है कि यहाँ पर प्रारम्भ से ही सस्ती श्रम-सुविधा एवं कच्ची सामग्री की अधिकता रही है। साथ-ही प्रारंभ में वृहद उद्योगों की स्थापना के अभाव के कारण हथकरघा इकाइयाँ उक्त इलाकों में स्थापित की गयीं। अनुभवी एवं योग्य बुनकरों की पैतृक ख्याति एवं कौशल-क्षमता का लाभ भी इन्हीं क्षेत्रों में उपलब्ध रहा। हथकरघा वस्त्रों की खपत राष्ट्रव्यापी रही है जिससे बुनकरों को निर्मित माल की बिक्री के लिये बड़ा बाजार उपलब्ध हो जाता था। यहाँ तक कि राज्य के पुनर्गठन के पूर्व हथकरघा वस्त्रों से सन् 1910-20 के दशक में लगभग 5 लाख रुपये के बराबर विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती थी। सबसे पहले प्रदेश के इन्हीं क्षेत्रों में अनेक इकाइयाँ स्थापित हुईं जिससे अन्य बुनकर एवं उनके उत्तराधिकारी आकर्षित हुए और उन्होंने भी इन्हीं क्षेत्रों में हथकरघा स्थापित किए। इस प्रकार आरम्भ के लाभ के कारण भी हथकरघा इकाइयाँ इन्हीं क्षेत्रों में केन्द्रित हो गयीं।

मांग एवं प्रतिस्पर्धा

प्रारम्भिक समय में तो हथकरघा उद्योग ने काफी प्रगति की किन्तु मिलों के वस्त्रों के प्रचलन में आने पर यह उद्योग बुरी तरह प्रभावित हुआ। इसका कारण यह है कि मिलों द्वारा उत्पादित वस्त्रों की कीमतें अपेक्षाकृत कम होती हैं। साथ ही उपभोक्ता, मिलों द्वारा उत्पादित भिन्न-भिन्न रंगों एवं डिजाइनों के वस्त्रों की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। परिणामस्वरूप मिल वस्त्रों की प्रतिस्पर्धा में हथकरघा वस्त्रों का टिकना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इसके विपरीत हथकरघा वस्त्र परम्परागत व प्राचीन फैशन के होने के साथ-साथ कई बार महंगे भी होते हैं। मिल वस्त्रों के प्रचलन में आने और हथकरघा वस्त्रों के अप्रचलित होने का प्रभाव यह हुआ कि हथकरघा वस्त्रों की मांग अत्यन्त कम हो गयी। अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक तो हथकरघा उद्योग द्वारा उत्पादित वस्त्रों की मांग विश्वव्यापी थी। भारत के अन्य राज्यों के साथ-साथ मध्यप्रदेश से भी हथकरघा वस्त्रों का निर्यात विदेशों को किया जाता था किन्तु मिल प्रणाली के प्रचलन में आने से अब इन वस्त्रों की मांग स्थानीय होकर रह गयी है। स्थानीय स्तर पर भी हथकरघा वस्त्रों को गलाकाट प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है।

उत्पादन एवं विपणन

हथकरघा उद्योग में तरह-तरह के वस्त्रों का उत्पादन किया जाता है। चन्देरी एवं महेश्वर में प्रसिद्ध सूती एवं रेशमी साड़ियाँ, रायगढ़, बिलासपुर एवं रायपुर में कोसा वस्त्र, साड़ियाँ, सूटिंग, सलवार सूट, कुरता पायजामा, शालें, फर्निशिंग वस्त्र, चादरें, परदे, तौलिये एवं पोशाख-वस्त्र, सौंसर में पोलिस्टर वस्त्र व साड़ियाँ, पाढना में जनता साड़ियाँ, सीधी में ऊनी दरियाँ, ग्वालियर एवं सिरोंज में दरी आदि निर्मित किये जाते हैं। इन वस्त्रों के उत्पादन के लिए बुनकर सहकारी समितियों एवं अन्य संस्थाओं से कच्ची सामग्री के रूप में सूत आदि प्रदान किया जाता है। इस सूत को आवश्यकतानुसार करघा, थून, डिजाइन-पिंजरा, चरखा, चोटा, एवं अन्य औजारों की सहायता से उपयुक्त डिजाइन

देकर वस्त्र तैयार किये जाते हैं । हथकरघा वस्त्रों को तैयार कर उन्हें बुनकर सहकारी समितियों एवं अन्य सम्बद्ध शीर्ष संस्थानों को विक्रय एवं वितरण हेतु उपलब्ध कराया जाता है । ये समितियाँ एवं शीर्ष संस्थाएं अपने बिक्री केन्द्रों के माध्यम से विक्रय व वितरण की व्यस्था करते हैं । विशेष उत्सवों या अवसरों पर छूट प्रदान कर बिक्री मात्रा को बढ़ाने के प्रयास किये जाते हैं । व्यापार-मेले एवं प्रदर्शनी आदि के माध्यम से भी विक्रय-सम्वर्द्धन के प्रयास किये जाते हैं । उत्पादन एवं विपणन प्रणाली को और अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता से इंकार नहीं किया जा सकता ।

श्रम, पूंजी व प्रशिक्षण

हथकरघा उद्योग में दो प्रकार के श्रमिक कार्यरत हैं - एक तो वे जो बुनकरों के परिवारों के सदस्य हैं जिनमें महिलाएं व बच्चे भी शामिल हैं और दूसरे वे जो बाहय श्रमिक हैं । प्रत्येक हथकरघा में दो श्रमिक परिवार के सदस्य हैं । परम्परागत उद्योग होने एवं सस्ती श्रम सुविधा उपलब्ध होने के कारण इस उद्योग में बुनकरों व श्रमिकों की पूर्ति की समस्या नहीं हैं बशर्ते उनके प्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था की जाए । इस उद्योग में संलग्न बुनकर प्रायः हलवा, कोष्टा एवं कोष्टी जाति के हैं लेकिन कहीं-कहीं मुस्लिम एवं अन्य जाति के लोग भी इसमें कार्यरत हैं । इनके कार्य के घन्टे अपेक्षाकृत अधिक हैं । मजदूरी की दर में भिन्नता होने के कारण एवं मजदूरी की न्यूनतम दर निर्धारित न होने के कारण श्रमिकों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है । इसके अलावा अब किन्हीं कारणों से वस्त्र-उत्पादन कार्य 2-3 दिन तक बन्द रहता है तो इन्हें कार्य की हानि होती है जिससे उनका आर्थिक नुकसान होता है । बुनकरों में संगठन एवं सहयोग का अभाव भी उनके शोषण का कारण है ।

हथकरघा उद्योग में विनियोजित पूंजी प्रायः बुनकरों के स्वयं के साधनों से प्राप्त की गयी है लेकिन कुछ ऐसे भी बुनकर हैं जिन्होंने बैंक, शीर्ष संस्था या संबंधित विभाग से ऋण ले रखा है । पूंजी की आवश्यकता मुख्य रूप से कच्ची सामग्री प्राप्त करने, यंत्र, उपकरण के क्रय करने एवं श्रमिकों की मजदूरी का भुगतान करने के लिये होती है । अनेक हथकरघा इकाइयां पूंजी के अभाव की समस्या से ग्रस्त हैं । इस समय बुनकरों को और अधिक पूंजी उपलब्ध कराया जाना उनके हित में होगा । इसके अतिरिक्त बुनकर सहकारी समितियों के आर्थिक स्रोत भी सीमित हैं जिससे समय पर बुनकरों को कच्ची सामग्री व मजदूरी प्राप्त नहीं हो पाती फलतः वे उत्पादन हेतु हतोत्साहित होते हैं । संबंधित विभाग एवं शीर्ष संस्थाओं द्वारा परम्परागत बुनकरों को प्रशिक्षित किये जाने के लिये राज्यव्यापी प्रशिक्षण कार्यक्रम बनाया गया है जिसके अन्तर्गत प्रदेश के अनेक जिलों में प्रशिक्षण केन्द्रों की व्यवस्था की जा रही है । अभी प्रशिक्षण के क्षेत्र में कारगर परिणाम प्राप्त नहीं हो पाये हैं ।

समस्याएं

वस्त्र तैयार करने के परम्परागत हथकरघा उद्योग में अनेक कठिनाइयाँ व समस्याएं हैं । इन समस्याओं के कारण जहाँ बुनकरों को पर्याप्त आय प्राप्त नहीं हो पाती वहीं दूसरी ओर उनका जीवन-स्तर ऊपर नहीं उठ पा रहा है । मशीनीकरण व वृहद उद्योगों के कारण हथकरघा वस्त्रों की मांग काफी संकुचित हो गयी है । प्रतिस्पर्धा में बड़े उद्योगों के सामने न टिक पाने के कारण हथकरघा इकाइयों का पतन होता जा रहा है । संमकों पर दृष्टिपात करते हैं तो सन्तोष होता है परन्तु जब वास्तविक धरातल पर उतर कर सूक्ष्म अवलोकन व विश्लेषण करते हैं तो परिणाम निराशावर्द्धक होते हैं । विगत कुछ वर्षों में हथकरघों की संख्या में भारी कमी आई है । दिन-प्रतिदिन हथकरघों का निष्क्रिय होना इस बात का प्रमाण है कि इनका अस्तित्व खतरे में आ गया है । यही स्थिति बनी रही तो वह दिन दूर नहीं जब हथकरघे हमारे संग्रहालय की शोभा बढ़ाने के अलावा किसी काम न आ सकेंगे ।

बुनकर सहकारी समितियों में से अनेक ऐसी हैं जब उनके पास बुनकर तैयार माल लेकर जाते हैं तो सूत व धन के अभाव में इन्हें अपना तैयार माल वापिस लेकर घर लौटना पड़ता है । महाराष्ट्र-मध्यप्रदेश की सीमा से लगे कस्बों के बुनकर वहां बुनकर समिति न होने के कारण महाराष्ट्र बुनकर महामण्डल को निर्मित माल की पूर्ति करने वहाँ जाते हैं जिससे आवागमन पर काफी व्यय होता है । इसके बावजूद भी उन्हें सूत व धन के अभाव के कारण खाली हाथ लौटने के लिए बाध्य होना पड़ता है । मजदूरी की दर अत्यन्त निम्न होने के कारण बुनकरों का आकर्षण कृषि व अन्य व्यवसायों की ओर बढ़ता जा रहा है । प्रदेश के कुछ बुनकर हथकरघा उद्योग की दुर्गति के कारण आने वाली पीढ़ी को इस उद्योग में न फंसने की सलाह दे रहे हैं जिससे उद्योग का भविष्य अन्धकारमय होने की संभावनाएं बलवती हो रही हैं ।

बुनकरों की ऐसी मान्यता है कि संबंधित पक्षकार एवं सहकारी समितियाँ उनकी सहायता के लिये कारगर कदम नहीं उठा पा रही हैं । उनके मत में जनता वस्त्रों का उपयोग सूखा पड़ने, बाढ़ आने या चुनाव के समय दान देने के लिए अधिक किया जाता है क्योंकि बाजार में इनकी मांग न के बराबर है ।

इसके अलावा 9769 हथकरघे वर्तमान में बन्द पड़े हैं जिन पर उत्पादन कार्य नहीं किया जा रहा है । इन करघों के बन्द पड़े होने से बुनकरों को कार्य की हानि हो रही है । इसी प्रकार 224 बुनकर सहकारी समितियाँ निष्क्रिय हैं जिससे बुनकरों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है ।

परम्परागत कुशल एवं अर्द्ध-कुशल बुनकरों को विभिन्न पक्षकारों, अभिकरणों व संबंधित विभाग से जो आर्थिक सहायता, ऋण व सुविधाएं उपलब्ध करायी जाती हैं उन्हें प्राप्त करने के लिये बहुत अधिक कानूनी व कागजी औपचारिकताएँ पूरी करने में भोले-भाले बुनकर घबराते हैं । साथ ही वास्तविक लाभ उन तक पहुँचने में काफी विलम्ब होता है । अतः प्रक्रिया का सरलीकरण बुनकरों के हित में होगा ।

समाधान

बुनकरों को आसान शर्तों पर साख-सुविधा, विपणन सुविधा व प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध करायी जाए जिससे वे हथकरघा उद्योग के क्षेत्र में आधुनिकीकरण व उन्नत तकनीक का प्रयोग कर सकें साथ ही न्यूनपूंजी व विपणन की समस्याओं से छुटकारा पा सकें । विगत वर्षों में इस दिशा में काफी प्रयास हुए हैं परन्तु अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है ।

शीर्ष संस्थाएं, संबंधित विभाग एवं सम्बद्ध अभिकरण हथकरघे के विकास एवं हथकरघा उद्योग में परम्परागत वस्त्रों के उत्पादन को बढ़ाने हेतु कारगर पहल करें । इस हेतु बन्द पड़े करघों को तत्काल प्रभाव से सक्रिय कराया जाए एवं प्रदेश में 50,000 नये हथकरघों की स्थापना की जाए । इस उद्योग द्वारा उत्पादित वस्त्रों को फैशन के अनुरूप बनाया जाए ताकि हथकरघा वस्त्र प्रतिस्पर्धा में न पिछड़े ।

बुनकर सहकारी समितियों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ की जाए जिससे बुनकरों के समस्त तैयार माल का भुगतान शीघ्र हो सके व उन्हें आवश्यकता के समय कच्चा माल मिल सके । जिन कस्बों में बुनकर सहकारी समिति कार्यरत न हो वहाँ बुनकर उप-समितियाँ बनाना उपयुक्त कदम हो सकता है । महाराष्ट्र,मध्यप्रदेश राज्यों की सीमा पर कार्यरत समितियों को प्रयास करना चाहिए कि प्रदेश के बुनकर महाराष्ट्र महामण्डल को निर्मित माल की पूर्ति न करें बल्कि प्रदेश में ही माल की पूर्ति की जाए ।

बुनकरों को उनके कार्यों के लिए प्राप्त होने वाली मजदूरी की न्यूनतम दर निर्धारित की जाए जिससे हस्तकौशल का इन्हें पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त हो सके और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठ सके । बुनकरों को दयनीय आर्थिक दशा से उबारने के लिये व्यापक कार्यक्रम बनाए जाएं ताकि उनके परिवार की कुल आय बढ़ सके । बुनकरों को चाहिए कि वे संगठित होकर सहयोग की भावना से कार्य करें जिससे उनका आर्थिक शोषण न हो ।

आर्थिक सहायता प्रदान करने के क्षेत्र में अधिकारों का विकेन्द्रीकरण होना अब सामाजिक है क्योंकि इससे बुनकरों को औपचारिकताएँ कम करनी पड़ेंगी और उत्पादन-स्थल पर ही सहायता प्राप्त हो जायेगी । इस संदर्भ में जिला योजना मण्डलों को व्यापक अधिकार दिए जा सकते हैं । इस व्यवस्था से बुनकरों को शीघ्र ही सहायता प्राप्त हो सकेगी । बुनकरों को जो आर्थिक सहायता एवं ऋण आदि दिया जाता है उसके उपयोग पर निगरानी रखी जाए कि वास्तव में उक्त सहायता बुनकर उत्पादक कार्यों में ही प्रयुक्त कर रहे हैं ।

हथकरघा उद्योग और उससे संबंधित विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन करने हेतु राज्य स्तर पर एक आयोग या समिति गठित की जाए जो प्रदेश के सभी हथकरघा जिलों का दौरा करके हथकरघा उद्योग के संबंध में व्यापक अनुशंसाएं करे । इस आयोग या समिति को व्यापक अधिकार दिए जाएं । आयोग या समिति विभिन्न अभिकरणों द्वारा किये गये अब तक के कार्यों का भी मूल्यांकन करे ।

बुनकरों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाने के लिये और समाज में उनको प्रतिष्ठित स्तर तक लाने के लिये हलबा, कोष्टा एवं कोष्टी आदि जातियों को ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर अधिक वित्तीय सहायता दी जाए । निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संबंधित पक्षकार, बुनकर, शीर्ष संस्थाएं व अन्य सम्बद्ध अभिकरण यदि उक्त सुझावों को क्रियान्वित करते हैं तो निश्चित ही बुनकरों का जीवन-स्तर ऊपर उठाया जा सकता है एवं हथकरघा उद्योग को पुनर्जीवित कर प्रगति के पथ पर अग्रसर कराया जा सकता है ।

सहा. प्राध्यापक वाणिज्य
राज्यकीय बेनजीर महाविद्यालय
बेनजीर, भोपाल

ग्राम विकास में कुटीर उद्योग

ब्रजलाल उनियाल

कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि कुटीर उद्योग तथा लघु उद्योगों का औचित्य इसलिए स्वीकार नहीं किया जा सकता कि इनसे पूंजी-निर्माण की कम संभावना रहती है। इस तरह के तर्कों का उत्तर देते हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए स्वर्गीय भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि ने कहा था कि अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन तथा कार्य की दृष्टि से संसाधनों को दो भागों में बांटा है यानी साज-सामान तथा मानव, किन्तु मानव संसाधन जैसे महत्वपूर्ण पहलू की वे कुछ उपेक्षा कर गए क्योंकि उसकी ओर उनका पूरा ध्यान नहीं गया। विकासशील देशों में मानव संसाधन अपेक्षाकृत बहुत हैं अतएव उसके भरपूर और कारगर उपयोग को ही उत्तम सामाजिक तथा आर्थिक नीति के रूप में अपनाना चाहिए। भारत इतना विशाल जनसंख्या वाला देश है और यहां के तीन चौथाई से भी अधिक लोग गांवों में रहते हैं और खेती तथा खेती से संबंधित धंधों पर निर्भर करते हैं। अतः उद्योग एक मात्र विकल्प है। बड़े उद्योगों के लिए बड़ी पूंजी चाहिए और साथ ही उच्च कोटि की प्रौद्योगिकी। सभी जानते हैं कि गांवों में ये दोनों सुलभ नहीं हैं। उच्च कोटि की प्रौद्योगिकी के लिए प्रायः विदेशों का मुंह ताकना पड़ता है। इन बड़े उद्योगों से क्षेत्रीय संतुलन हीनता तथा धन के केन्द्रीयकरण की समस्या का हल नहीं हो सकता। अतएव हमें मजबूरन कुटीर उद्योगों की ओर ध्यान देना पड़ता है।

जन शक्ति का उपयोग

एक बात हम यहां गांधी जी की नहीं भूल सकते। गांधीजी ने लगभग 60 साल पहले कहा था कि "मशीन युग का उद्देश्य आदमियों को मशीनों में परिवर्तित करना है जब कि मेरा ध्येय मशीन में परिवर्तित हुए मनुष्य को फिर मनुष्य के मूल रूप में स्थापित करना है।" गांधीजी की यह उक्ति तो, मनुष्य के स्वरूप के विषय में है यानी वे चाहते थे कि मानव मानव रहे – हृदयहीन पशु न बने, यंत्रवत् काम करने वाला न बने, बल्कि संवेदनशील बने। लेकिन इसका इससे भी अधिक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि कुटीर उद्योग और लघु उद्योग देश के गांवों के अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्ग को रोजगार देते हैं और खेतिहर लोगों के जीवन-स्तर को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि बड़े उद्योगों की स्पर्धा से तथा आबादी के बेतहाशा बढ़ जाने से लघु तथा कुटीर उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। सभी जानते हैं कि बड़े उद्योगों को गांवों में नहीं ले जाया जा सकता। साथ ही यह भी जरूरी है कि देश के सभी वर्गों में उत्पादकता बढ़े। अतएव यह अनिवार्य है कि देश की जनशक्ति व संसाधनों का भरपूर लाभ उठाया जाए। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुटीर उद्योगों में अधिक लोग लगाए जा सकते हैं और वे अधिक से अधिक क्षेत्रों में फैले होते हैं जबकि बड़े उद्योगों से प्रति व्यक्ति आय भले ही कम मिले पर भला तो अधिक से अधिक लोगों का होगा। अतएव इस दिशा में भी प्रयत्न किये जा रहे हैं कि कुटीर उद्योगों में भी प्रति व्यक्ति उत्पादन व आय बढ़ाई जा सके।

कुटीर उद्योग गांव वालों को उनके ही घरों में रोजगार का अवसर देते हैं। इनके विकेन्द्रीकरण के कारण, वे लोग अपने अपने कामों में अपनी कार्यकुशलता और प्रतिभा को बढ़ा सकते हैं। जिन लोगों के पूर्वज उन्हीं विशेष धंधों में मुद्दत से काम कर रहे हों उनमें कार्यकुशलता और दक्षता तो मिलेगी ही साथ ही उनका सौंदर्य बोध भी औरों की अपेक्षा बेहतर होगा। इस संबंध में यह भी कहना अप्रासंगिक न होगा कि ग्राम उद्योगों को पुर्नस्थापित करने तथा प्रोत्साहन देने में अखिल भारतीय बुनकर तथा ग्राम उद्योग संघ ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उन्होंने विशेष रूप से ऐसे उद्योगों को बढ़ावा दिया जिनमें बाहरी मदद की ज्यादा जरूरत नहीं होती। एक उदाहरण लीजिए – संघ ने इस बात का प्रचार किया कि धान की कुटाई तथा आटे की पिसाई को यदि कुटीर उद्योग के रूप में अधिक अपनाया जाये तो भोजन में न केवल अधिक पोषक तत्व बने रहेंगे बल्कि अनाज की हानि भी कम होगी। चावलों को कूटने व पालिश करने में चावलों की काफी हानि होती है। अगर घानी का तेल इस्तेमाल किया जाए तो तेल अधिक पोषक तो मिलेगा ही, साथ ही तेल की खली का भी अधिकतम उपयोग हो सकेगा। तेल की घानियों के प्रसार से लोगों को साबुन, पेन्ट तथा वार्निश आदि बनाने के कुटीर

उद्योग चलाने में भी मदद मिलेगी । संघ ने कुटीर उद्योगों के प्रचार के लिए जगह-जगह प्रदर्शनियां आयोजित की तथा लोगों को प्रोत्साहित किया । इस दिशा में धान कूटने, आटा पीसने, तेल निकालने, गुड़ बनाने, मधुमक्खी पालने, कागज बनाने, साबुन बनाने, चमड़ा रंगने, स्लेट व पेन्सिल बनाने के उद्योगों को काफी प्रोत्साहन दिया गया है और कई गांवों में अच्छी सफलता भी मिली है. । कुटीर उद्योग में तैयार किए गए माल की लोकप्रियता निश्चय ही प्रदर्शनी से बढ़ सकती है । इसका हम एक उदाहरण देंगे । भारत के पूर्व डायरेक्टर आफ इंटेलिजेन्स श्री मलिक को सन् 1932 में बिहार के भूकम्प पीड़ित क्षेत्रों का दौरा करना पड़ा । दौरे के दौरान वे गांधी जी से भी मिले । गांधी जी के पूछने पर कि वे खादी का प्रयोग क्यों नहीं करते, श्री वी.एन. मलिक बोले कि खादी मोटी व भद्दी होती है । तब गांधीजी की सलाह पर वे खादी प्रदर्शनी देखने गए जहां उन्होंने खादी की नफासत को देखा व सराहा और उन्हें वहां खादी के कपड़े भेंट किए । श्री मलिक तब से निजी जीवन में ब्रिटिश काल में ऊंचे आलाकार होते हुए खादी का प्रयोग करते रहे । उक्त घटना लेखक को स्वयं श्री मलिक ने सुनाई ।

कुछ महत्वपूर्ण कुटीर उद्योग

"हमें गांवों को ही अपनी आर्थिक प्रगति का आधार बनाना है । यह तो स्वयंसिद्ध तथ्य है कि हम गरीबी और पिछड़ेपन को दूर करने के अपने सभी प्रयासों को उन जगहों पर केन्द्रित करें जहां पिछड़ेपन का सबसे अधिक प्रकोप हो । बड़े शहर, बड़ी मशीनें, बड़ा विज्ञान सब अपनी जगह हैं । लेकिन वे उनकी अपेक्षा अधिक महत्व व प्राथमिकता का स्थान नहीं ले सकते ।"

— भारत रत्न, श्री मोरार जी देसाई

इस समय हमारे देश में जो महत्वपूर्ण कुटीर उद्योग चल रहे हैं उनमें से प्रमुख हैं—

मधुमक्खी पालन, कुटीर माचिस उद्योग, मिट्टी के बर्तन का कुटीर उद्योग, साबुन कुटीर उद्योग, चमड़ा कुटीर उद्योग — कसाना, रंगना, उपचार आदि, चन्दन तेल उद्योग, हाथ का बना कागज, गन्ने का गुड़ व खांडसारी, ताड़ का गुड़ या ताड़ के दूसरे उत्पाद, अनाज व दालों का उपचार, गोबर गैस से ईंधन व खाद, चपड़ा (लाक्ष) निर्माण, वन्य औषधियों व फलों का संकलन, फल उपचार व परिरक्षण, बांस का काम (बेंत का सामान), लुहार का काम, बढ़ई का काम, रेशों (नारियल की जटा) का काम, कत्था, गोंद ।

कुछ प्रमुख कुटीर उद्योगों का संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है ।

खादी

खादी के बारे में इतना कुछ प्रचारित किया गया है कि इसके संबंध में अधिक कहना युक्तिसंगत नहीं होगा । फिर भी कुछ रोचक तथ्य यहां दिए जा रहे हैं ।

एक बार श्री गुलजारी लाल नंदा ने बहुत समय पहले कहा था कि अगर हमारे कपड़े के कारखाने 50 करोड़ रुपये का माल तैयार करते हैं तो उस रकम में से 10 करोड़ रुपये मजदूरों को दिए जाते हैं जब कि इसके मुकाबले यदि उतने ही माल से खादी तैयार की जाए और 100 करोड़ का कपड़ा बिके तो 70 करोड़ रुपये खादी बनाने वालों को मिलेगा । यह रहस्य है खादी दर्शन का ।

इसके बारे में प्रमुख रूप से दिए गए तर्क ये हैं:— खादी भारत की सामाजिक व आर्थिक दशाओं के अनुरूप है । इससे गांव के लोगों को अधिक से अधिक रोजगार मिलता है । इसके लिए न तो ज्यादा पूंजी चाहिए और न विशेष प्रौद्योगिकी, कच्चा माल सब जगह सस्ता मिलता है । खादी बनाने में समय का सदुपयोग होता है । महिलाएं भी इसमें भरपूर योगदान कर सकती हैं ।

ग्राम तेल उद्योग

संसार में कुल जितना तिलहन पैदा होता है उसका लगभग पाँचवां भाग अकेले भारत में पैदा किया जाता है । इसकी पैदावार मूंगफली, अरंडी, अलसी, सरसों आदि जैसी फसलों से मिलती है । इतनी भारी पैदावार से जाहिर है कि इन फसलों का कितना महत्व है । इन फसलों से अधिकांश रूप से तेल निकाला जाता है जो कि खाने के तेल के रूप में इस्तेमाल किया जाता है । थोड़ा-सा अंश औद्योगिक कार्यों के लिए प्रयुक्त होता है ।

हमारे यहां तेल या तो बैलों से चलने वाली घानी से या मशीन से निकाला जाता है । अधिकांश घानियां मद्रास तथा उत्तर प्रदेश में हैं । जब से मशीनों से तेल निकाला जाने लगा है, अनेक घानियां बंद कर दी गई या उनसे पूरी क्षमता के अनुसार काम नहीं लिया जाता । आमतौर पर यह शिकायत की जाती है कि घानी कार्यकुशल नहीं होती क्योंकि घानी से केवल 35% तेल ही खींचा जाता है जबकि मशीन 40% तेल निकालती है । इसे बहुत भारी नुकसान इसलिए नहीं माना जा सकता कि घानी से मिलने वाली खली में ज्यादा तेल होता है

और वह मवेशियों के लिए अधिक पोषक होती है । आशा की जाती है कि सुधरी हुई घानी से हानि की मात्रा को कम किया जा सकता है । यह देखने में आया है कि घानियों की संख्या दिन-ब-दिन कम होती जा रही है क्योंकि घानी मशीन के मुकाबले मुश्किल से खड़ी रह सकी है । मिलें तो कच्चा माल जमा कर लेती हैं और फिर तेल पेरने का काम बराबर चलता रहता है लेकिन घानी के साथ यह बात नहीं है । इसका एक मात्र हल यह मालूम पड़ता है कि सरकार ऐसी व्यवस्था कर दे कि खाने का सारा तेल घानियां ही निकालें । साथ ही मशीनों द्वारा निकाले जाने वाले तेल पर सरकार उपकर लगाये । घानियों में सुधार लाया जाए ।

घरेलू तेल व्यवसाय न केवल काफी लोगों और मवेशियों को काम देता है बल्कि उम्दा व पोषक भी होता है ।

रेशम उद्योग

रेशम का कृत्रिम धागों के इस्तेमाल होने के बावजूद, अपना अलग ही महत्व है । भारत में चारों किस्म का रेशम तैयार किया जाता है जो कि संसार में कहीं और नहीं पाया जाता है । शहतूत, टसर, एरी और मूंग । शहतूत के कीड़े भारत के अनेक भागों में पाले जाते हैं जैसे पश्चिम बंगाल, कर्नाटक, जम्मू कश्मीर, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु कश्मीर में शहतूत की एक ही फसल ली जाती है जबकि दूसरे राज्यों में पाँच छः फसलें ली जाती हैं। रेशम के कीड़ों के धंधे से लाखों लोगों को रोजी-रोटी मिलती है । इस धंधे में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के भी लाखों लोग काम करते हैं । अकेला भारत ही ऐसा देश है जहां जलवायु की विषमता के कारण अलग-अलग तरह के पेड़ों पर अलग-अलग रेशम के कीड़े पाले जाते हैं । असम, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश तथा आन्ध्र प्रदेश में गैर-शहतूती रेशम उद्योग में लगभग सभी लोग अनुसूचित जातियों व जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के हैं । हमारे देश के सामाजिक-आर्थिक ढांचे में रेशम उद्योग ने महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है ।

ग्राम चमड़ा उद्योग

हमारे देश में भेड़ों और भैंसों की संख्या इतनी अधिक है कि देश में चमड़े के प्रयोग और व्यवसाय की उपेक्षा नहीं की जा सकती । इस व्यवसाय का महत्व इसलिए और भी अधिक है कि दलित वर्गों की बहुत बड़ी संख्या चमड़े के धंधे से जुड़ी हैं । अधिकांश भेड-बकरी तथा भैंस गांवों में ही पाली जाती हैं । अभी तक गांवों के चमड़े व्यवसाय का कोई सुव्यवस्थित बड़ा संगठन विकसित नहीं हो पाया है ।

एक मोटे अनुमान के अनुसार गांवों में चमड़ा उद्योग में जितने लोग लगे हैं उसका दसवां भाग भी शहरी कारखानों में काम नहीं करता । जहां तक चमड़े की गुणवत्ता और मात्रा का प्रश्न है दोनों में ही गांव का व्यवसाय बेहतर ठहरता है । पिछले साठ-सत्तर वर्षों से यह व्यवसाय गांवों में धीरे-धीरे घट रहा है । लेकिन इस धंधे में ह्रास के कई कारण हैं । एक तो अब भी चमड़ा उतारने के तौर तरीके गांवों में घिसे पिटे हैं, साथ ही साफ सुथरे भी नहीं हैं । रंगने वाली वनस्पति सामग्री भी महंगी है । माल के बिक्री की सुव्यवस्थित प्रणाली का अभाव है । इन सब कारणों से गांव में इस धंधें से जुड़े लोग शहरों की तरफ भाग रहे हैं । गांवों में चमड़े को बनाने, उपचारित करने के बेहतर तौर-तरीकों का प्रचार-प्रसार किया जाए । इस दिशा में अखिल भारतीय खादी और ग्राम उद्योग आयोग ने बहुत सराहनीय काम किया है ।

धान की कुटाई

हमारे देश की फसलों में धान का प्रमुख स्थान है । चावल भारत के अधिकांश लोगों का मुख्य आहार है । धान की खेती के अन्तर्गत दिन-ब-दिन क्षेत्रफल बढ़ रहा है और धान की उपज बराबर बढ़ती जा रही है। अतएव यह स्वाभाविक है कि धान की कुटाई पर विशेष ध्यान दिया जाए ।

धान की भूसी निकाल कर चावल तैयार करने का काम या तो चक्कियों और ढेंकियों आदि से किया जाता है या फिर मशीनों से । मशीनों से भूसी निकालने में चावल की काफी हानि होती है और भूसी भी अच्छी नहीं होती । हाथ से कुटे धान से मिलने वाले चावल का स्वाद बेहतर होता है और उसमें पोषक तत्व भी अधिक होते हैं । इस दिशा में अखिल भारतीय खादी और ग्राम उद्योग मंडलों ने सराहनीय काम किया है । अनेक सहकारी समितियों को स्थापित करने में सहायता दी है।

ताड़-गुड़-उद्योग

भारत में इस समय करोड़ों की संख्या में ताड़ के पेड़ हैं । यदि अधिकांश पेड़ों से गुड़ तैयार किया जाए तो हजारों लोगों को धंधें में लगाया जा सकता है । इस समय भी लाखों पेड़ बेकार पड़े हैं जिनसे न तो गुड़ तैयार किया जाता है और न उनका और उपयोग ही हो पाता है । गन्ने की उम्र की तुलना में ताड़ का पेड़ बहुत लम्बे समय तक रहता है यानी लगभग 30 से 50 साल तक । ताड़ का गुड़ तैयार करने के लिए पूंजी भी बहुत थोड़ी चाहिए और इसके लिए ज्यादा दक्षता की भी जरूरत नहीं है । सच पूछिए तो गन्ने की उपज लेने वाले क्षेत्र को भी दूसरी

फसलों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है । इस वर्ष भारत को अभूतपूर्व विदेशी मुद्रा के अभाव में ऋण भुगतान का सामना करना पड़ा । इस संकट को दूर करने में चीनी उद्योग ने अपनी भूमिका अदा की है क्योंकि भारी मात्रा में चीनी निर्यात की जा रही है जब कि पिछले साल चीनी का आयात करना पड़ा था । कुछ भी हो, अगर हमें विदेशी मुद्रा बचानी है तो अधिक से अधिक कुटीर उद्योगों का मुंह ताकना पड़ेगा ।

अब तक भी ताड़ का गुड़ तैयार करने के लिए वैज्ञानिक सुधरे उपकरणों का कम ही उपयोग होता है । इन वैज्ञानिक सुधरे उपकरणों में सुधरी भट्टियां भी शामिल हैं । इस उद्योग को तकनीकी दिशा निर्देश तथा प्रशिक्षण की सुविधाएं भी दी जा रही हैं । आदिवासी जनजातियों को तो इस उद्योग से काफी लाभ पहुंच सकता है ।

गुड़ और खांडसारी

चीनी की बढ़ती लोकप्रियता तथा खपत के बावजूद, गांव के दूर-दराज के इलाकों में अब भी गुड़ और खांडसारी का प्रचलन है । चीनी उद्योग के मुकाबले गुड़ उद्योग मुश्किल से ही टिक पा रहा है, इसलिए यह निहायत जरूरी है कि गुड़ की उत्पादन लागत को घटाया जाए जिसके लिए सुधरे हुए उपकरण तथा तौर-तरीके अपनाए जाने चाहिए । अब भी हमारे देश में पुराने अवैज्ञानिक तरीके इस्तेमाल किये जा रहे हैं जिनका स्थान सुधरे, सस्ते वैज्ञानिक उपकरणों को लेना चाहिए ।

खांडसारी विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में तैयार की जाती है । खांडसारी तैयार करने का सारा काम गांवों में ही किया जाता है । इसमें न तो ज्यादा पूंजी की जरूरत होती है और न दक्षता की । खांडसारी का शीरा भी खाने योग्य होता है । जहां कहीं भी इसके उत्पादन की संभावनाएं हैं वहां खांडसारी उद्योग अभी भी कुटीर उद्योग के रूप में चल रहा है ।

हाथ का बना कागज

भारत में हाथ का बना कागज मुगल काल से ही इस्तेमाल होता रहा है । भले ही यह कागज बहुत ही सीमित मात्रा में तैयार किया जाता हो, इसके टिकाऊपन और विशेष कामों के लिए इसके प्रयोग ने अब तक भी इस कुटीर उद्योग को जीवित रखा है । यह दिलचस्प बात है कि अनेक यूरोपीय देश अपने नोटों (मुद्रा) को तैयार करने के लिए हाथ का बना कागज तैयार करते हैं — (स्मॉल इन्डस्ट्रीज एंड द डेवेलपिंग इकोनोमी इन इंडिया- पृष्ठ-84 - राव) । आज जब कागज का अकाल सा पड़ा हुआ है और हमें इसके लिए विदेशों का मुंह ताकना पड़ रहा है — विशेष रूप से कंगाली में आटा गीला हो रहा है । पहले ही विदेशी मुद्रा का संकट था और ऊपर से तुर्रा बाहर से कागज मंगवाने का । अतएव इस कुटीर उद्योग पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है । शिक्षा बोर्ड इसके प्रचार तथा औद्योगिक प्रगति की मांग है कि तत्काल कागज का उत्पादन बढ़ाया जाए । देश में कच्चे माल की भी कमी नहीं है । गांवों में काफी कागज तैयार किया जा सकता है । स्कूली बच्चे भी इसे हुनर के रूप में सीख सकते हैं । इस दिशा में हमें संयम तो बरतना ही चाहिए ।

क्या यह संभव नहीं है कि हम आयातित कागज के कोटे में कटौती करें ? इस कटौती को आंशिक रूप से क्या हम हाथ के बने कागज से पूरी नहीं कर सकते ? क्या हम फिलहाल ऐसा नहीं कर सकते कि कुछ विशेष कार्यालयों व अवसरों पर भेजे जाने वाले विशेष निमंत्रण पत्र केवल हाथ के बने कागज पर ही छापे व भेजे जाएं? .... ये संभावनाएं विचारणीय हो सकती हैं पर यहां पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा,यूरोप में अभी तक हाथ के बने कागज का उद्योग इसलिए जीवित है क्योंकि वहां लोगों ने इस उद्योग में वैज्ञानिक विधियां अपनायी हैं । (—) उपर्युक्त वही पुस्तक पृष्ठ — (84) यूरोप में अनेक प्रौद्योगिक सुधार किए गए हैं । यह हर्ष का विषय है कि इस कुटीर उद्योग में सराहनीय काम केन्द्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला, हैदराबाद तथा हाथ के कागज पर अनुसंधान प्रयोगशालाएं, पूना में किया है । अखिल भारतीय खादी तथा ग्राम उद्योगआयोग ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम किया है। यह आयोग लोगों को प्रशिक्षण की सुविधाएं प्रदान करता है, माल के मानकीकरण पर सलाह देता है साथ ही माल की बिक्री के बारे में भी सलाह-मशविरा देता है ।

अखाद्य तेलों से साबुन बनाना

अब भी ऐसे अनेक बीज ऐसे हैं जिनका प्रयोग बहुत ही कम किया जाता है या जो बेकार हो जाते हैं । ऐसे कुछ तेल हैं : नीम, कंटजिया, धूमा आदि । इन के तेल को उद्योगों में इस्तेमाल किया जा सकता है । इस प्रकार साबुन उद्योग में हम जिन खाद्य तेलों का प्रयोग करते हैं, उनके बदले हम इन तेलों का प्रयोग कर सकते हैं ।

अन्य उद्योग

विभिन्न कुटीर उद्योगों की स्थापना के बारे में सलाह देते समय इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि क्या वहां उस

उद्योग के लिए कच्चा माल आसानी से मिल सकता है, क्या उसके लिए आवश्यक कुशल जन शक्ति मिल सकती है, तथा बिक्री की सुविधाएं मुहैया की जा सकती है । इस संबंध में ग्राम उद्योग आकलन समिति ने अपनी रिपोर्ट में इन बातों पर जोर दिया है : उद्योगों में अनुसंधान, प्रशिक्षण तथा उपयुक्त कार्मिकों की आवश्यकता, पर्याप्त रूप से शिक्षित तथा अनुभवी लोग जो इस प्रकार के कार्यों को सुचारू रूप से संगठित कर सकें । इसके लिए आवश्यक आर्थिक वातावरण तैयार करना होगा । ऊन भी एक ऐसा उद्योग है जो कुटीर उद्योग के रूप में खूब पनप सकता है ।

हम आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड से सीख सकते हैं, उन्होंने कैसे ऊन उद्योग से इतनी समृद्धि प्राप्त की । यदि भारत की भेड़ों और बकरियों से विशेष रूप से संकर नस्ल के पशुओं से, ऊन ली जाए तो मद्रास, राजस्थान आदि इलाकों में यह उद्योग खूब पनप सकता है और जिस विदेशी मुद्रा के पीछे देश को भारी किल्लत उठानी पड़ रही है, उसे भी कम किया जा सकता है । इस व्यवसाय की प्रगति के लिए यह अनिवार्य है कि हम ऊन की गुणवत्ता और मात्रा दोनों में वृद्धि करें । इसे निस्संदेह कुटीर उद्योग के रूप में भी अपनाया जा सकता है । कुटीर उद्योग से तैयार किए गए उम्दा पशमीने, कम्बल आदि पर्वतीय राज्यों की अच्छी ऊन से तैयार किए जा रहे हैं ।

बिक्री

हालांकि कुटीर उद्योग की बड़ी विशेषता यही है कि स्थानीय संसाधनों का प्रयोग करते हुए उत्पादन इतना तो हो कि स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके, लेकिन यह भी आवश्यक है कि एक केन्द्रीय बिक्री संगठन बनाया जाए । यह संगठन कच्चे माल व साज सामान के वितरण को तो देखे ही, साथ ही उत्पादन व बिक्री के सुधरे तौर-तरीके भी सुझाए ।

कुटीर उद्योग पर अधिक जोर

कितने खेद का विषय है कि देश को आजाद हुए चार दशक से भी अधिक समय हो गया पर अब भी हम संसार के सबसे अधिक गरीब छः देशों में हैं । अब भी गांव के बहुत से लोग बेकारी, भुखमरी व अभाव की गिरफ्त में हैं । यानी देश का वह भाग जो देश को रोटी कपड़ा देता है, खुद अभावों की चक्की में पिस रहा है । क्यों ? इसलिए कि प्रौद्योगिकी के नाम पर बड़े उद्योग मुखिया रहे हैं, पूंजी कुछ ही हाथों में केन्द्रित हो रही है, समृहित सम्पन्नता के द्वीप शहरों में बन रहे हैं, गांवों में दीनता व अभाव का नाच हो रहा है । आइए, हम गांधी जी के सपनों को साकार करें जिन्होंने सोचा था कि गरीब का हर आंसू पोंछा जाए । यह तभी होगा जब कुटीर उद्योग पर जोर दिया जाएगा और देश भर में इन उद्योगों के फैलाने से बेकारी और बेरोजगारी चन्द सालों में गायब हो जाएगी । बड़े उद्योगों के लिए तो पश्चिमी प्रौद्योगिकी अच्छी है पर आप क्यों चाहते हैं कि सौ में से केवल 10 पनपें और 90 तरसें, तड़पें ! आबादी पर रोक लगाना तो है ही अनिवार्य पर साथ ही खेत से ज्यादा लोगों को जीविका नहीं मिलेगी - खेत भी बंट-बंट कर पट्टी से हो गए हैं । अतएव, चलिए कुटीर उद्योगों की ओर । डा० सेहूमाचेर की मान्यता है कि पाश्चात्य प्रौद्योगिकी विकासशील देशों की गरीबी का हल नहीं है । विकासशील देशों को तो कुटीर उद्योगों को पनपाकर उनकी सुधरी प्रौद्योगिकी तैयार करती है । हमें अपनी विशाल जन शक्ति का भरपूर उपयोग करना है जैसा कि गांधी जी ने कहा था । "ग्राम स्वराज" की कुँजी तो कुटीर उद्योगों में है । गांधी जी विज्ञान व प्रगति के विरोधी नहीं थे जैसा दिनकर जी ने लिखा है : "कौन कहता है कि गांधी शत्रु थे विज्ञान के, वे मनुज से मात्र इतनी बात कहते थे । रेल-मोटर या कि पुष्पक यान चाहे जो रचो, पर सोच लो आखिर तुम्हें जाना कहां हैं ?"

चिन्तन की नयी दिशा

यद्यपि इंग्लैंड व अमेरिका में भी लघु उद्योगों पर ध्यान दिया जा रहा है पर वहां की और भारत की स्थिति में आकाश-पाताल का अन्तर है । हमारे देश में आबादी का दबाव बहुत ज्यादा हो गया है । इसे संभालने के लिए अलग प्रयत्न करने पड़ेंगे पर फिलहाल इस संभव की स्थिति से निपटना भी अनिवार्य है । अधिक संख्या में लोगों का सही इस्तेमाल कुटीर उद्योग में लगकर हो सकता है क्योंकि उसमें कम पूंजी, मामूली कार्यकुशलता, सामान्य साधनों से ही काम चल सकता है । इस क्षेत्र में अनुसंधान की सख्त जरूरत है ।

हमें पूरी स्थिति में पर्नमूल्यांकन करना चाहिए । हमने कहां क्या गलती की है । हमें आर्थिक तथा सामाजिक सभी पहलुओं पर विचार करना है । रुपये के अवमूल्यन ने तो समस्या को और भी विकट कर दिया है । अतः निर्यात पर और जोर दिया जाए । कुटीर उद्योग में तैयार की गई सुन्दर वस्तुओं के निर्यात की भारी संभावनाएं हैं । हमारे सामने जबर्दस्त चुनौतियां हैं जिनका हमें सामना करना है । बड़े उद्योग अपनी जगह हैं पर कुटीर उद्योग अपनी जगह पर हैं । कुटीर उद्योगों की स्थापना विस्तार से देश को तत्काल बेरोजगारी से जूझने का मौका मिलेगा, गांवों की दशा सुधरेगी और गांवों की प्रगति का मतलब पूरे देश की प्रगति है, क्योंकि वास्तविक भारत तो गांव में रहता है ।

के. 38 एफ. साकेत, नई दिल्ली—17

युग दृष्टा : जवाहरलाल नेहरू

चन्द्रदत्त 'इन्दु'

आज 27 वर्षों का समय बीत गया उस मनोहारी आभा वाले व्यक्तित्व को तिरोहित हुए। एक लम्बा अन्तराल-राजनीति के क्षेत्र में उसके बाद कई पीढ़ियां आई, कई सीढ़ियां चढ़ी गईं, मगर उसके स्वरूप की विशालता, व्यक्तित्व की अनोखी आभा, युगदृष्टि की समग्रता से भरा चिन्तन, ममत्व भावना से आलोड़ित मन, स्नेह सिक्त सरलता की गंध से भरा और कर्मशील गति की निरन्तर प्रवाहिता का एक ऐसा विलक्षण उदाहरण एक ही मानव में देखने को मिला, इसीलिए वह व्यक्तित्व, जिसे हम पंडित जवाहरलाल नेहरू के नाम से जानते हैं, आज भी भारत की जनता के मन में आदर और अपनत्व के साथ गहराई से अविस्मरणीय बना हुआ है। नेहरू जी के प्रधानमंत्री के रूप में शासन की अवधि 17 वर्ष ही थी, किन्तु लगता है, नेहरू युग में, उस वटवृक्ष की छाया में, उन आदर्शों में, उस चेतना में हम आज तक जी रहे हैं और आगे भी वह चिन्तन धारा हमारे सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को सतत गतिशीलता देती रहेगी।

क्या ही अनोखा व्यक्तित्व पाया था नेहरू जी ने - वह एक ही जीवन जीते हुए देश के कर्णधार, समाज सुधारक, साहित्यकार, चिन्तक, शांतिदूत, विश्व राजनीति के महत्वपूर्ण स्तम्भ और नई पीढ़ी के प्यारे चाचा बनकर हर क्षेत्र में व्यापकता के साथ सम्मानीय बने रहे।

नेहरूजी राजनीतिज्ञ थे। स्वतंत्रता के बाद उन्होंने लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत बनाने के लिए देश के विकास की सुदृढ़ नींव रखी। चहुंमुखी प्रगति को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने नए भारत के निर्माण में अपनी सूझबूझ और सक्रियता से नयापन लाते हुए, नई-नई सम्भावनाओं को साकार रूप दिया। मगर इसके साथ ही वह मनीषी थे, चिन्तक थे, साहित्यकार थे, इतिहासकार थे और थे एक सच्चे कलाकार। प्रकृति के अद्भुत चितेरे नेहरूजी ने अपने देश की प्राकृतिक सुषमा को मन में बसाकर बड़ी ही मार्मिकता से अपनी पुस्तक भारत की खोज में उसे सशक्त अभिव्यक्ति दी।

चाचा नेहरू

नेहरू जी का व्यक्तित्व कुछ ऐसा दर्शनीय था कि बच्चे उन्हें देखकर पुलकित हो उठते थे, उन्हें लगता था - उनको कोई अपना, बिल्कुल नजदीकी उनके पास खड़ा है। आज भी बच्चे उनका चित्र देखकर कहते हैं - यह चाचा नेहरू हैं। चाचा बनकर उन्होंने दुनियाभर के बच्चों को अपना असीम स्नेह बांटा। समय-समय पर नेहरू जी बच्चों को उपहार भेजते रहते थे।

बच्चों के प्रति उनका अगाध स्नेह देखकर 1954 से नेहरू जी के जन्मदिन अर्थात् 14 नवम्बर को बाल दिवस का नाम और रूप दे दिया गया था। नेहरूजी ने अपने जीवनकाल में सदा ही बाल-दिवस को जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य माना। भले ही वह राजनैतिक सरगर्मियों में व्यस्त होते, विदेशी मेहमानों के बीच कितने ही उलझे होते, लेकिन बाल-दिवस के उपलक्ष्य में मनाए जा रहे बाल-समारोहों में भाग लेना वह नहीं भूलते थे। वहां जाकर नेहरूजी अपने पद की गरिमा को भूलकर बच्चों के बीच बच्चे ही बन जाते थे। प्रकृति ने उन्हें सरलता भी खूब दी थी। झरने की तरह स्वच्छन्द विचरते थे वह बच्चों के बीच, फूलों जैसी हंसी हंसकर वह बाल मन को गुदगुदा देते थे। बच्चों के साथ वह उछल-कूद और खेल-तमाशों में भी शामिल होते थे। अपने गले से मालाएं उतार-उतार कर बच्चों को पहनाना उन्हें प्रिय था - यानी आत्मीयता का ऐसा आदान-प्रदान नेहरू जैसा युगपुरुष ही कर सकता था।

नेहरूजी का शालीन व्यक्तित्व उनके सांस्कृतिक मनोभावों की छाप छोड़ता था। वह भारत के लोकजीवन को निकट से देखना चाहते थे। भारतीय संस्कृति की सतरंगी छवि उन्हें मोहित कर देती थी। वह उसमें रम जाना चाहते थे। वस्तुतः लोकजीवन की इस निकट पहचान ने ही उन्हें जनता का प्यारा बनाया। नेहरू नाम सुनकर जनता उनके दर्शनों को उमड़ पड़ती थी।

उनमें दिखावा या बनावट बिल्कुल नहीं था। भले ही व्यक्तिगत बातों में मशगूल हों या सार्वजनिक भाषण दे रहे हों, उनकी भाषा, स्वर और बोलने का अंदाजा सदा एक-सा रहता था।

कला और कलाकारों को नेहरूजी खूब सम्मान देते थे। वह विभिन्न राज्यों की नाच टोलियों के बीच नाचते, उनकी पोशाकें बनकर उन्हीं में खो जाते। वह चाहते थे भारत में

कलाओं का विकास हो। वस्तुतः कला को मानव समाज और इतिहास की अमूल्य धरोहर मानकर वह उसे श्रद्धा और आदर से देखते थे। जब भी वह किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम में जाते, बाल कलाकारों या लोक-कलाकारों से मिलते। सारे बच्चे, युवक-युवतियां उन्हें प्रधानमंत्री के नाम से नहीं, चाचा नेहरू के नाम से पहचानते। चाचा शब्द की महत्ता को सही अर्थों में सिद्ध कर दिखाया था नेहरूजी ने। इस सम्बोधन में जन-जन की आत्मीयता भरी थी। एक सम्बंध की गंध आती थी, एक परिवार का तादात्मय जुड़ता था।

आकर्षक व्यक्तित्व

इतिहास की इस सच्चाई को भी भुलाया नहीं जा सकता कि करोड़ों की जनसंख्या वाले इस देश में नेहरूजी के जमाने में चोटी के राजनेता इस देश में थे, किंतु नेहरूजी का व्यक्तित्व उस समय अद्वितीय आकर्षण का केन्द्र था। आजादी से पहले ही बड़े बाप के इस अद्भुत त्याग वाले बेटे के साथ जनता के लगाव की भावना जुड़ गई थी। इतने वैभवसम्पन्न परिवार से आकर देश की आजादी के लिए नेहरूजी ने जो संघर्ष किया, जेल की यातनाएं सही, उन्हें जानकर जनता सोचती थी - आनंद भवन के सारे वैभव छोड़कर खादी के कपड़ों में आजादी के लिए मर मिटने का प्रण लेकर शहर-शहर और गांव-गांव आजादी की अलख जगाता घूमता, कैसा होगा वह राजकुमार?

नेहरूजी के असाधारण व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बहुत से ऐसे देशवासी, जिनके परिवार का अनुराग ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति था, बिना परिणाम की चिंता किए स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। नेहरुजी युवा अवस्था में अपने सदस्य साहस के लिए प्रसिद्ध थे। प्रौढ़ावस्था में उनकी लगन और देशभक्ति ने उन्हें जनता का प्रिय बनाया। वृद्धावस्था आने पर भी आयु ने अंत तक उनकी दर्शनीयता पर अपना कोई विपरीत प्रभाव नहीं छोड़ा। 74 वर्ष की आयु प्राप्त करके भी नेहरु जी का व्यक्तित्व उतना ही दर्शनीय बना रहा। उनके गठे शरीर पर चूड़ीदार पाजामा और शेरवानी कुर्ता उसी तरह फबते रहे। शेरवानी पर लगी ताजे गुलाब की कली और हाथ में थामी सुंदर छड़ी लिए नेहरुजी हर जगह सबसे अलग ही दीखते थे। नेहरुजी एक विचारवान योगी पुरुष थे। उनके त्याग, बलिदान और अथक परिश्रम ने दुनिया को नई चेतावनी दी। नई दिशाएं और राहें दिखाईं। उस एकाकी व्यक्ति ने करोड़ों लोगों को ही नहीं, उस युग के सम्पूर्ण इतिहास को प्रभावित किया। उनके भाषण का मोहक अंदाज, धीर-गंभीर ओजपूर्ण वाणी, अनुभव की तराश, सभी कुछ ऐसा था कि सुनने वाले मंत्रमुग्ध हो जाते। भारत का कोई कोना ऐसा न था, जहां नेहरु गए न हों और जहां उन्होंने अपनी वाणी से लोगों को प्रभावित न किया हो। यही नहीं, विदेशों में भी उनके भाषण को सुनने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती थी। श्रोता मुग्धभाव से बैठे उनके तेजस्वी चेहरे को देखकर प्रसन्न होते रहते थे।

नेहरुजी समग्र रूप से भारत की जनता के हितचिंतक थे। उन्होंने प्रत्येक धर्म, वर्ग, जाति और सम्प्रदाय को समत्वभाव से जोड़ने का काम किया। इसीलिए देशवासियों के मन में उनकी निश्छल देश सेवा के प्रति सच्ची श्रद्धा थी। उनके राजनैतिक विचार राष्ट्रीयता एवं समाजवाद से ओतप्रोत थे। नेहरुजी ने प्रथम बार अखिल भारतीय कांग्रेस के कार्यक्रम में समाजवाद को स्थान दिया। उनके समाजवाद का स्वरुप जनकल्याण था। शासन की ऐसी व्यवस्था, जिसमें देश के प्रत्येक नागरिक को बिना किसी भेदभाव के उन्नति के समान अवसर और सुविधाएं प्राप्त हों। जीवन निर्वाह के समान साधन प्राप्त हों। सभी देशवासी शिक्षित और सुखी सम्पन्न हों।

वह मानवता के जबरदस्त हामी थे। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवकल्याण की दिशा में उन्होंने दूसरे राष्ट्रों के साथ मिलकर काम किया। राष्ट्रमंडल की स्थापना में उनका महत्वपूर्ण योगदान भुलाया नहीं जा सकता। मानव की सेवा करना उनका कर्तव्य बन गया था। यही कारण था कि वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व वाले भारत के एकमात्र ऐसे नेता थे, जिन्हें सभी प्यार करते और आदर देते थे।

नेहरुजी की सामाजिक चेतना

पंडित नेहरु ने स्वाधीन भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में शासन का भार अपने कंधों पर लिया। अनेक समस्याएं थीं देश के आगे। भारत का विभाजन हो गया था। देश के विभाजित होते ही पूर्वी-पश्चिमी पाकिस्तान में अल्पसंख्यक हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचारों का कहर टूट पड़ा था। ऐसे में हिन्दू परिवार भागकर भारत आ रहे थे। इस समय साम्प्रदायिक उन्माद अपनी चरम सीमा पर था, किंतु नेहरु ने बिना संतुलन खोए, विवेक से राजनैतिक सूझबूझ का परिचय देते हुए इस प्रचण्ड ज्वाला को शांत कर दिया। पाकिस्तान से भागकर आए शरणार्थियों के रहने-सहने और खाने-पीने की सारी व्यवस्था नेहरु सरकार ने की। उन्हें अपनाकर अपने देश का नागरिक बनाया। उसी का परिणाम है कि वे शरणार्थी आज भारत में रहकर सुख-समृद्धि से भरपूर हैं। यहां वह सम्मान का जीवन जीते हैं। शायद अब तक यह भूल भी चुके हैं

कि वह कभी शरणार्थी होकर इस देश में आए थे ।

स्वाधीनता प्राप्ति के लिए अदम्य साहस और संघर्ष का परिचय देने वाले नेहरुजी की संघर्ष यात्रा की असली शुरुआत तो भारत के स्वाधीन होने पर ही हुई । शरणार्थियों की समस्या सुलझी तो देशी रियासतों की समस्या आ खड़ी हुई । अंग्रेजी सरकार जाते समय भारत की आजादी को धूल-धूसरित करने के लिए कई षड्यंत्र रच चुकी थी । उसने देशी रियासतों को यह खुली छूट दे दी थी कि वे चाहें तो भारत में अपना विलय कर लें, चाहें तो स्वतंत्र रहें । भारत को एक सुगठित और सुदृढ़ स्वरूप प्रदान करने के लिए यह आवश्यक था कि इन रियासतों को भारत में विलय के लिए राजी किया जाए । यह एक कठिन कार्य था । सरदार पटेल की संकल्पशक्ति से यह कार्य पूरा हुआ, किंतु तभी पाकिस्तान ने कश्मीर पर 2 अक्तूबर, 1947 को आक्रमण कर दिया । भारत को बदले में सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी । नेहरुजी ने भारत का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप बनाए रखने के लिए हर कठिनाई को हंसते-हंसते पार किया और देश के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप पर आंच नहीं आने दी । लार्ड माउंटबेटन के सेक्रेटरी कैम्पबेल जानसन ने लिखा था — "आज सभ्यता और चेतना में विश्वास जवाहरलाल नेहरु को देखकर होता है । उनके चारों ओर व्यक्तियों के बिछाए हुए षड्यंत्रों के जाल थे अथवा उन्हें घेरकर समुद्र जैसा पागलपन उमड़ रहा था, किन्तु तब भी नेहरुजी के मुख से जो उद्‌गार निकले, वे दया और उदारता के उदगार थे, बुद्धि और विवेक के उदगार थे ।"

राजनीतिक क्षितिज पर उन्हें अनेक चुनौतियां मिलीं । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अन्दर ऐसे लोगों की कमी न थी, जो नेहरुजी की नीतियों से असहमत थे । विशेष रूप से दक्षिणपंथियों से उनकी नहीं बन पाती थी । दल के अंदर-बाहर आए दिन नए-नए समीकरण बनते-बिगड़ते रहे ।

इस प्रकार नेहरुजी ने देश के चहुंमुखी विकास के कार्यक्रम को शुरु करके भारत को आत्म-निर्भर बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया । उन्होंने खेती और ग्राम विकास को औद्योगिक विकास और शहरी विकास से कम नहीं समझा । नेहरुजी की मान्यता थी कि गांव अगर विकास के प्रकाश में जीना सीख जाएंगे, तो देश के विकास में तेजी आएगी । यही नहीं, नेहरुजी ने सामाजिक सुधार के लिए सरकारी और गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा प्रयास किए । भारत सेवक समाज की स्थापना करके नेहरुजी ने गांवों को नई चेतना देने का महत्वपूर्ण कार्य आरंभ किया । भारत सेवक समाज के शिविर देश के गांवों में लगाए जाते थे । इन शिविरों के द्वारा गांव वालों को सफाई, साक्षरता और परिश्रम की सीख दी जाती थी । नेहरुजी का नारा-आराम हराम है, इन्हीं शिविरों के माध्यम से जन-जन तक पहुंचाया गया ।

नेहरुजी सभी धर्मों को समान आदर देते थे । वह विशुद्ध रूप से एक भारतीय थे । सामाजिक कुरीतियों को वह दूर करना चाहते थे । भारत में होने वाले बाल-विवाहों को वह रोकना चाहते थे । उनका कहना था — "अपरिपक्व अवस्था में विवाह जैसा महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य वर-वधु दोनों के लिए सामाजिक, मानसिक अपराध जैसा ही है । भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या भी उनकी चिंता का कारण थी ।" बाल-विवाह इस दृष्टि से भी देश के लिए अभिशाप सिद्ध हो रहे थे । उन्हीं के प्रयास से सामुदायिक मंत्रालय कायम हुआ । परिवार नियोजन का सिलसिला चला । इससे गांवों में नई चेतना फैली और जनसंख्या के बारे में लोगों को सही वैज्ञानिक जानकारी मिली । साथ ही स्वस्थ रहकर सुखी जीवन बिताने का मंत्र भी जनता ने सीखा ।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर शांतिदूत

भारत की विदेश नीति पर नेहरुजी के विचार स्पष्ट थे — 7 सितम्बर, 1946 को आकाशवाणी से प्रसारित अपने भाषण में कहा था — 'भारत का इरादा तटस्थतावादी नीति पर चलने का है ।' नेहरुजी ने साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद तथा फासिज्म का विरोध करते हुए सभी प्रकार के मुद्दों से भारत को अलग रखने की नीति अपनाई । साथ ही जोर दिया कि अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांति से हल हो । उनका कहना था — भारत सदैव से विश्व शांति और सहअस्तित्व का समर्थक रहा है । नेहरुजी के बनाए — पंचशील की दुनिया ने सराहना की ।

जवाहरलाल नेहरु ने अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बड़े गुटों से अलग रहकर गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई । इसी का अनुसरण कर भारत दूसरे देशों के साथ विश्व शांति, सामूहिक सुरक्षा और मैत्रीपूर्ण संबंधों को विकसित करता रहा ।

नेहरुजी ने 1947 में दिल्ली में आयोजित एशियाई देशों के सम्मेलन में कहा था — "अब एशियाई देश यूरोपीय देशों के सामने प्रार्थनापत्र लेकर नहीं जाएंगे । जो देश हमसे सहयोग करेंगे, उनसे हम बराबरी के आधार पर सहयोग करेंगे ।"

भारत ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ब्रिटिश राष्ट्रकुल में

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक : मणि की परख : लेखिका : विमला रस्तोगी
प्रकाशक:किताब घर: नई दिल्ली: मूल्य-35/- रुपये

विमला रस्तोगी की बाल कहानी संग्रह "मणि की परख" को देखने-पढ़ने का सुयोग प्राप्त हुआ । विद्वान बन्धु डॉ. श्याम सिंह शशि ने संकलन की भूमिका लिखकर इसके यथोचित महत्व को रेखांकित किया है ।

विमला जी साहित्य के उर्ध्वमुखी अभियान पर सहज गति से निरंतर अग्रसर हैं । इस कठिन पथ का प्रत्येक पड़ाव उनकी सृजनशीलता का मुखर साक्षी है । लेखिका का बहुरचना धर्मी व्यक्तित्व साहित्य के क्षेत्र में भाव और विचार की अनुभूति परक अभिव्यक्ति से रचना धर्मिता को सार्थकता प्रदान कर रहा है । इन्होंने सृजन के लिये विशेष रूप से बाल साहित्य का चयन कर अपने भीतर की नारी सुलभ-ममता, करूणा की पुकार को सुना है और युग सापेक्ष्य आवश्यकता के नाजुक क्षणों को अत्यन्त संवेदनशीनता के साथ पहचाना है । युग की पुकार को सुनना और उसके विविध क्षणों को शब्दों का भाव प्रवण कलेवर प्रदान करना चेतन साहित्यकार का मूल धर्म है । विमला जी ने इसका पालन अपनी कहानियों में पूरे दायित्व के साथ किया है ।

चौदह कहानियों के इस संकलन में अनेक महत्वपूर्ण चित्त-वृत्तियाँ भास्वर हुई हैं । पुराण, लोकगाथा, इतिहास तथा आधुनिक जीवन से जुड़ी बाल समस्याओं को लेखिका ने उनके वृहत्तर आयाम और सूक्ष्मतम गुत्थियों को इन कहानियों में पूरी प्रभावोत्पादकता के साथ प्रस्तुत किया है । अनेक कहानियों की आत्मपरकता ने प्रभाव को और भी अधिक प्रगाढ़ बना दिया है । कहानी लिखने और कहानी जीने में अन्तर होता है । लिखना आम बात है किन्तु जीना दुर्लभ है । कहानी जीना ही कहानीकार की वास्तविक पहचान है । ये कहानियां विमला जी के अर्न्तमन की संवेदना, सहानुभूति और औदार्य को प्रतिध्वनित करती हैं और बताती हैं कि लेखिका की दृष्टि विषय के चयन में अत्यन्त व्यापक और उनकी प्रस्तुति मनोवैज्ञानिक है । पात्रों के भीतर प्रवेश कर उनके भोले-भाले भावों से तादतम्य कर उन्हें सरल-सहज शब्दों में व्यक्त कर देने में अपेक्षित सफलता मिली है ।

कोई भी कला कभी पूर्ण नहीं होती । अपूर्णता ही प्रगति की प्रेरणा होती है । कहानी में लक्ष्य की विविधता और वर्गीय भिन्नता के कारण कतिपय प्रसंगों में स्तरीय बोधगम्यता का अभाव है । श्रेणीगत वर्गीकरण की भी अपेक्षा की जाती है । ये कमियां कलागंत परिपक्वता के साथ जाते-जाते जाएंगी । कुछ कहानियों का अंत प्रेमचन्द जी की पद्धति में हुआ है जो समय की मांग के अनुरुप नहीं है । आज का बालक अपेक्षाकृत अधिक जागरूक और ज्ञान सम्पन्न है । गत्यात्मकता भी विशेष ध्यातव्य है । अतः उसे प्रत्येक रूप से अपदिष्ट कर उसके विकासोन्मुख कोमल व्यक्तित्व का अपमान करना वांछनीय नहीं है । वह स्वयं यात्री है अन्वेषक है । इसलिये आवश्यक है कि हर प्रकार के बाल साहित्य में उसकी इस आवश्यकता को अनुकूलता प्रदान करने, जिज्ञासा को जगने और उसकी खोजी वृत्ति को स्वतंत्र विचार करने का यथा संभव अवसर प्रदान किया जाना चाहिये ।

वस्तुतः बाल साहित्य लेखन अपेक्षाकृत कठिन कार्य है । साहित्य के इस पक्ष का आकाश विस्तृत, आवश्यकताएं अपरिमित और अपेक्षा में अनन्त हैं । इस कठिन डगर पर दायित्व का संकल्प ले जो भी साहित्कार आगे बढ़कर आता है और उसे पूरा करने का प्रयास करता है, वह सबके अभिनन्दन का पात्र है । इन्हीं अपेक्षाओं के साथ हम "मणि की परख" का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि विमला जी और भी कृतियाँ बाल जगत के साहित्य को समर्पित करेंगी । इससे पहले लेखिका के चार बाल कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं ।

समीक्षक : रणधीर श्रीवास्तव
128/63, डी, किदवई नगर,
कानपुर, उत्तर प्रदेश

भारतीय समाज में नारी का महत्व

सत्यव्रत आर्य

स्त्री और पुरुष को जीवन रूपी रथ के दो समान पहिए बताया गया है। यदि रथ का एक पहिया ठीक से नहीं चलता तो रथ की गति मंद हो जाती है। इसी प्रकार स्त्री के सहयोग के बिना अकेला पुरुष दुनिया में कुछ नहीं कर सकता। जीवन के हर क्षेत्र में नारी ने पुरुष को सहयोग दिया है। जहां मां के रूप में स्त्री संतान का पालन-पोषण तथा संस्कारित करके उसे जीवन के दायित्वों का निर्वाह करने योग्य बनाती हैं, वहां वह खेतों, दफ्तरों, विद्यालयों, कारखानों, बागानों तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में काम करके अपने श्रम से आर्थिक विकास में योगदान करती है किन्तु यह सत्य है कि पुरुष के समान और कुछ मामलों में पुरुष से अधिक श्रम तथा योग्यता का उपयोग करने पर भी नारी का शोषण होता है और वह पुरुष के मुकाबले कमजोर मानी जाती है। इस अन्तर तथा भेदभाव को दूर करने के लिए हमारे संविधान में नर और नारी को समान दर्जा दिया गया है।

स्वतंत्रता के बाद सरकार ने अनेक ऐसे कानून तथा नियम आदि बनाए हैं जिनसे स्त्रियों को समान अधिकार मिले हैं और उसमें सम्मान तथा गर्व के साथ जीवन बिताने की क्षमता आई है। वास्तव में सैंकड़ों सालों की गुलामी, अज्ञानता, अशिक्षा एवं कई प्रकार की कुरीतियों के कारण मध्यकाल में हमारा समाज पिछड़ गया था। इसका प्रभाव नारी की प्रतिष्ठा और समाज में उसके स्थान पर भी पड़ा किन्तु यह कहना गलत होगा कि भारत की नारी की स्थिति हमेशा ऐसी ही थी।

वैदिक युग में नारी का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान था। वह नर की सब बातों में सहभागिनी थी। अतः हमारे वेदशास्त्र आदि वैदिक ग्रंथों में इसे पुरुष की अर्धांगिनी माना गया है। हमारे ग्रन्थों के अनुसार नारी वात्सल्य, त्याग और करूणा की धारा है। इसको जाया, जननी तथा पूज्यनीया इन तीनों रूपों द्वारा हमारे ग्रंथों में सम्मानित किया गया है। नारी ने स्वयं भी विष्णु के समान समय के अनुसार रूप परिवर्तन किये हैं। आर्यों के समय में नारियों का अत्याधिक सम्मान किया जाता था। यज्ञ की सफलता उसकी यज्ञ में उपस्थिति पर निर्भर थी। अभिप्राय यह है कि उस समय पारस्परिक तथा सामाजिक जीवन में स्त्रियों के अधिकार पुरुष के ही तुल्य थे।

दोनों के परस्पर प्रेम, सहयोग तथा सहायता से ही मनुष्य जीवन के ध्येय की पूर्ति हो सकती है। भारत में नारी का सतीत्व तो विश्व भर के साहित्य में कहीं अपनी उपमा नहीं रखता। महाभारत काल संस्कृत तथा धर्म मर्यादाओं की दृष्टि से उच्चतर स्तर पर रखा गया है। उस काल में भी हमें गान्धारी, कुन्ती जैसी आदर्श नारियों के दर्शन होते हैं। हमारे इतिहास में अनेक नारियों ने अपने त्याग बलिदान तथा वीरता से समस्त नारी जगत को गौरवान्वित किया है। एक राजा हाडा हुआ है। राजा हाडा की बहुत रूपवती रानी से शादी हुई और हाडा देश में लड़ाई के नगाड़े बजने लगे किन्तु राजा का मन अपनी नयी नवेली दुल्हन छोड़कर समर भूमि में जाने को नहीं कर रहा था। उसकी रानी ने तुरन्त परिस्थितियों को समझ लिया और राजा को समझाया कि इस समय तुम मुझे छोड़कर युद्ध को चले जाओ किन्तु राजा नहीं माना तो रानी ने अपना सर काट कर एक रेशमी रूमाल से ढककर उसे भेंट के रूप में पति के पास भिजवा दिया। ऐसा करने से राजा का सम्पूर्ण प्रेम स्त्री की ओर से हटकर देश की रक्षा की ओर चला गया और लड़ाई में राजा हाडा की विजय हुई। इस प्रकार नारी ने अपने प्राण निछावर कर के देश की रक्षा की।

पूर्व मध्यकाल में नारी जाति ने अपना नारीत्व-धर्म तनिक भी विचलित नहीं होने दिया। हमें कदम-कदम पर भारतीय नारी के उज्ज्वल भविष्य के दर्शन होते हैं। आज के युग में भी नारी ने अपना वर्चस्व बनाये रखा है। भारतीय नारी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर है। चाहे वह नौकरी हो या उद्योग धन्धे वह पुरुष के साथ कन्धे से कन्धे मिलाकर चल रही है। फिर भी प्रगति के नाम पर उसने मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। भारतीय नारी प्रगति, मर्यादा, शालीनता और सहिष्णुता का अनोखा संगम है।

गांव – देवगांव
पो.आ. – देवगांव
जिला – हम्मीरपुर
पिनकोड-210341 उ.प्र.

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक : स्वामी रामतीर्थ : लेखक डा. भवानीसिंह राना
प्रकाशक : डायमण्ड पाकेट बुक्स : मूल्य 12.00

भारत को संतों की भूमि कहा गया है । यहाँ समय-समय पर ऐसे अनेक ऋषि संत महात्मा और धर्मगुरु अवतार लेते रहे हैं जिन्होंने मनुष्य को अधर्म, पाप कर्म, अंध भौतिकता तथा विषय वासनाओं के गर्त से निकालकर धर्म, सत कर्म, परोपकार तथा पुण्य कार्यों के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है । स्वामी रामतीर्थ भारत की इसी समृद्ध संत-परम्परा की एक अनूठी कड़ी थे । वे परम्परावादी संतों के अध्यात्मवाद से भिन्न विचार रखते थे । उन्होंने धर्म के साथ साथ देश सेवा और समाज सुधार पर भी बल दिया और धर्म की मान्यताओं को वैज्ञानिक तथा तार्किक आधार पर प्रस्तुत करके उसे आधुनिक शिक्षा के दीक्षित लोगों के लिए सहज स्वीकार्य बनाने का प्रचार किया । यही नहीं उन्होंने जापान तथा अन्य देशों में हिन्दू धर्म व भारतीय दर्शन का प्रचार भी किया। 33 वर्ष के अल्प जीवन में स्वामी रामतीर्थ ने जो योगदान दिया उसके लिए भारत देश सदैव उनका ऋणी रहेगा ।

ऐसे महात्मा का जीवन-चरित्र हर पीढ़ी के लिए प्रेरणादायक होता है । संभवत: इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है । इस पुस्तक में स्वामी जी के जन्मकाल की धार्मिक तथा ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि से लेकर उनके अवसान तक की सभी घटनाओं का अत्यंत मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है । पुस्तक को रोचक तथा पठनीय के साथ-साथ विश्वसनीय बनाने में लेखक को प्रचुर सफलता मिली है क्योंकि संवादों और कला शैली के साथ-साथ उनके समकालीन महापुरुषों और उनके संपर्क में आठ अन्य विद्वानों के कथन व लेखों के अंश भी यथास्थान उद्धत किए गए हैं । उनकी इस जीवनी को पढ़कर आश्चर्य मिश्रित गर्व होता है कि किस प्रकार एक साधारण और निर्धन परिवार में जन्मा बालक आज प्रतिभा तथा परिश्रम के बल पर छोटी सी जिन्दगी में अध्यात्मक एवं धर्म के शिखर पर पहुंच गया । ओजस्वी वक्ता, सच्चे संन्यासी प्रतिभाशाली दार्शनिक एवं दयाशील व्यक्ति के साथ-साथ वे कवि भी थे और राम के नाम से उन्होंने अनेक कविताओं की रचना की । इसके अलावा उनकी भाषा भी काव्यमय होती थी 27 मार्च 1906 की अपनी हिमालय यात्रा के संस्मरण में अपने एक अनुयायी को लिखे पत्र के इस अंश से स्वामीजी निर्झर की घाटी में मानों शिव ने स्वयं अपने हाथों से कठोर चट्टानों को तोड़-तोड कर प्राय: दो दर्जन सुन्दर सरोवरों का निर्माण किया है । पहाड़ों पर जंगल के सीधे-सीधे प्रकाय प्रेमी विशालकाय वृक्ष खड़े हैं । ......निस्संदेह वे ही उस महान वनमाली कृषक की कृपा और प्रेम के सर्वथा योग्य पाया है ।

सरल किन्तु ओजपूर्ण भाषा तथा बोधगम्य शैली में लिखी यह जीवनी स्वामीजी के जीवन के सभी पहलुओं को स्पर्श करती है। पेपर बैक रूप में छपी यह पुस्तक सस्ती होने के कारण साधारण पाठकों द्वारा बिना किसी कठिनाई के खरीदी जा सकती है । लेखक इतनी उत्कृष्ट पुस्तक लिखने के लिए बधाई के पात्र हैं ।

समीक्षक : सुभाष चन्द्र सत्य
सी-7/134 ए केशव पुरम
(लारेंस रोड), दिल्ली-110035

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/5
P & T Regd. No. D (DN) 9
Licenced under U (DN)-5
to post without pre-payment at NDPSO, New Delh

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित